अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

(१ से ५)

अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

प्राचीन कवियों व ज्ञानियों द्वारा विरचित
आध्यात्मिक भक्ति गीतों व स्तुतियों का
अनुपम संकलन

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई

प्रथम संस्करण :

२४वें तीर्थंकर वर्तमान शासन नायक बालब्रह्मचारी श्री महावीर भगवान के मोक्ष कल्याणक के पावन अवसर पर प्रकाशित, कार्तिक कृष्ण ३०, २१ अक्टूबर २०२५–

मुमुक्षुता की प्रगटता व भावना ही इस पुस्तक का मूल्य है।

अध्यात्म संजीवनी में समाहित गीत सभी प्रमुख **AUDIO APP - Gaana, JioSaavan, Amazon Music, Spotify, Apple Music, Hungama, Google Music, Wynk Music, Youtube Music** आदि पर निःशुल्क उपलब्ध है।

प्राप्ति स्थान :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
३०२, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. ३०, नवयुग सीएचएस लि.
वी.एल. मेहता मार्ग, विले पार्ले (पश्चिम), मुम्बई ४०००५६
website: www.vitragvani.com, e-mail: info@vitragvani.com

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) ३६४२५०, फोन: ०२८४६ २४४३३४, २४४३५८
website: www.kanjiswami.org, e-mail: contact@kanjiswami.org

तीर्थधाम मंगलायतन
अलीगढ़-सासनी मार्ग, सासनी-२०४२१६ (हाथरस), उत्तरप्रदेश
मोबा. ९९९७९९६३४६, ९७५६६३३८००
Website: www.mangalayatan.com; e-mail: info@mangalayatan.com

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापू नगर, जयपुर ३०२०१५
फोन. ०१४१ २७०७४५८, २७०५५८१
Website: www.ptst.in, e-mail: info@ptst.in

अहो भाव

वीतरागी देव–शास्त्र–गुरू इस पवित्र जैन शासन के मूल आधार हैं। धर्मी श्रावकों को इनके प्रति सहज ही परम उत्कृष्ट अहोभाव आता है। जिनधर्म के प्रति अपूर्व भावना से प्रेरित होकर हजारों वर्षों से प्राकृत, संस्कृत और वर्तमान में हिन्दी तथा अन्य प्रचलित देशीय भाषाओं में अनेक ज्ञानियों व आत्मार्थी कवियों ने आध्यात्मिक भक्ति साहित्य की रचना की है। इन कवि रत्नों में कविवर दौलतरामजी, श्री भूधरदासजी, श्री भागचन्दजी, श्री बुधजनजी, श्री द्यानतरायजी आदि द्वारा प्रसूत ये सभी भक्तियाँ भेदविज्ञान, वीतरागता व वैराग्य रस से सराबोर हैं। इन्हीं कवियों के भक्ति उपवन में से कुछ उत्कृष्ट भक्ति पुष्पों का संकलन यहाँ **अध्यात्म संजीवनी** के रूप में निबद्ध कर प्रस्तुत किया जा रहा है; अतः सर्वप्रथम हम उन सभी ज्ञानी कवियों के प्रति अपनी श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं।

प्रस्तुत अध्यात्म संजीवनी में ख्यातिप्राप्त संगीतकार एवं गायक श्री आसित देसाई, आलाप देसाई तथा सुरेश जोशी द्वारा संगीत की मधुर लहरियाँ तथा देश के कई प्रसिद्ध गायक कलाकारों द्वारा स्वर लहरियाँ प्रदान की गई हैं; अतः हम उन सभी कलाकारों व सहयोगियों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

इन आध्यात्मिक पदों को आत्मार्थी भव्य जीवों की आत्मरूचि पुष्ट करने, चिरकाल तक सुरक्षित रखने एवं आगामी पीढ़ी तक पहुँचाने की पवित्र भावना से ही **श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई** के द्वारा यह प्रयास किया गया है। आशा है कि आत्मार्थीजन इस अध्यात्म भक्ति रूपी अमृत का रसपान कर ज्ञान और वैराग्य की प्रेरणा लेंगे तथा इन भक्ति गीतों में समाहित भावों को समझकर निज स्वाध्याय में वृद्धि करेंगें।

- **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ले, मुम्बई**

अनुक्रमणिका

एलबम-1 अध्यात्म संजीवनी (भाग-1)			पेज नं.
१.	तुम्हारे दर्श बिन स्वामी.....	कवि सेवक	01
२.	नित्य बोधिनी माँ.....	पं.रविंद्रजी	03
३.	वे मुनिवर कब.....	पं.भूधरदासजी	05
४.	ममता की पतवार.....	पंकजजी जैन	07
५.	धरम बिना कोई नहीं.....	पं.बुधजनजी	09
६.	सुन चेतन इक बात.....	पं.द्यानतरायजी	11
७.	हम न किसी के.....	पं.द्यानतरायजी	13
८.	जिया कब तक.....	पं.राजमल्लजी पवैया	15
९.	सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे.....	पं.भागचंदजी	19
१०.	देखा आतमरामा.....	पं.बुधजनजी	21

एलबम-2 अध्यात्म संजीवनी (भाग-2)

१.	तिहारे ध्यान की मूरत.....	.....	25
२.	जिनवाणी के सुनैं.....	पं.बुधजनजी	27
३.	ऐसी योगी क्यों न.....	पं.दौलतरामजी	29
४.	हम तो कबहूँ.....	पं.दौलतरामजी	31
५.	चेतन यह बुधि.....	पं.दौलतरामजी	33
६.	हे मन तेरी को कुटेव.....	पं.दौलतरामजी	35
७.	बाबा मैं न काहू का.....	पं.बुधजनजी	37
८.	अहो भवि प्राणी चेतिये.....	पं.द्यानतरायजी	39
९.	ज्ञानी जीव निवार.....	पं.दौलतरामजी	41
१०.	अब हम अमर.....	पं.द्यानतरायजी	43

एलबम-3 अध्यात्म संजीवनी (भाग-3)

१.	हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया...	पं.दौलतरामजी	47
२.	जिनवाणी जान सुजान रे...	पं.दौलतरामजी	49
३.	कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर...	पं.दौलतरामजी	51
४.	काल अचानक ही ले जायेगा...	पं.बुधजनजी	53
५.	साधो ! छांडो विषय विकारी...	पं.द्यानतरायजी	55
६.	करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान...	पं.भागचंदजी	57
७.	राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो...	पं.दौलतरामजी	59
८.	घट में परमातम ध्याइये हो...	पं.द्यानतरायजी	61
९.	हमको कछू भय ना रे...	पं.बुधजनजी	63
१०.	जिया तुम चालो अपने देश...	पं.दौलतरामजी	65

अनुक्रमणिका

एलबम-4 अध्यात्म संजीवनी (भाग-4)			पेज नं.
१.	प्रभु थारी आज महिमा...	पं.दौलतरामज	69
२.	अब सबै जगद्वन्द मिटावो...	पं.दौलतरामज	71
३.	ऐसे जैनी मुनि महाराज...	पं.भागचंदजी	73
४.	जे दिन तुम, विवेक बिन खोये...	पं.भागचंदजी	75
५.	ऐसा मोही क्यो न अधोगति जावै...	पं.दौलतरामज	77
६.	छाँड़त क्यों नहिं रे...	पं.दौलतरामज	79
७.	जीव तू भ्रमत सदैव अकेला...	पं.भागचंदजी	81
८.	निर्ग्रन्थो का मार्ग...	पं.अभयकुमरजी	83
९.	तोहि समझायो सौ-सौ बार...	पं.दौलतरामज	85
१०.	लागा आतमराम सो नेहरा...	पं.द्यानतरायजी	87

एलबम-5 अध्यात्म संजीवनी (भाग-5)			
१.	दिन-रात स्वामी तेरे गीत.....	-	91
२.	हो जिनवाणी जु.....	पं.बुधजनजी	93
३.	परम गुरु बरसत ज्ञान झरी.....	पं.द्यानतरायजी	95
४.	जीव तैं मोधपना कित पायो.....	पं.द्यानतरायजी	97
५.	चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो.....	पं.दौलतरामजी	99
६.	या नित चितवो उठि के भोर.....	पं.बुधजनजी	101
७.	री मेरे घट ज्ञान घनागम.....	पं.द्यानतरायजी	103
८.	मोहि कब ऐसा दिन आय हैं.....	पं.द्यानतरायजी	105
९.	ज्ञानी जीवनि के भय.....	पं.भागचंदजी	107
१०.	कर!कर! आतम हित रे प्राणी....	पं.द्यानतरायजी	109

अध्यात्म संजीवनी

भाग – १

1

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहिं चैन पडती है।
छवी वैराग्यमय तेरी, मेरी आँखों में फिरती है।।टेक।।

निराभूषण विगत दूषण, परम आसन मधुर भाषण।
नजर नैनों की आशा की, अनी पर से गुजरती है।।१।।

नहीं कर्मों का डर हमको, कि जब लग ध्यान चरणन में।
तेरे दर्शन से सुनते हैं, करम रेखा बदलती है।।२।।

मिले गर स्वर्ग की सम्पत्ति, अचम्भा कौन सा इसमें।
तुम्हें जो नयन भर देखे, गति दुरगति की टलती है।।३।।

हजारों मूर्तियाँ हमने, बहुत सी अन्य मत देखी।
शांत मूरत तुम्हारी सी, नहीं नजरों में चढती है।।४।।

जगत सिरताज हो जिनराज, सेवक को दरश दीजे।
तुम्हारा क्या बिगड़ता है, मेरी बिगड़ी सुधरती है।।५।।

हे प्रभो! आपके दर्शन के बिना मुझे इस संसार में सदा आकुलता ही भासित होती है। आपकी वैराग्यमय मुद्रा सदैव मेरी आँखो के सामने दिखाई पड़ती है।

हे प्रभो! आप समस्त आभूषण और दोषों से रहित हो, तथा आप समवसरण में सर्वोच्च आसन पर बिराजमान होकर भव्य जीवों को दिव्य देशना प्रदान करते हो। मेरी भावना है कि आप मुझे नजर भर देखें पर आप तो सदैव अपनी नासाग्र दृष्टि से बिराजमान ही हैं।

हे प्रभो! जब तक आपके चरणों में मेरा ध्यान रहता है तब तक मुझे कोई कर्मादि का भय नहीं रहता है क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि आपके दर्शन करने से सभी जीवों का भाग्य बदल जाता है।

हे प्रभो! आपके दर्शन करने के पुण्य के फल में यदि स्वर्ग की सम्पत्ति भी मिले तो इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि जो आपकी सौम्य वीतरागी मुद्रा एक बार देखता है उसकी दुर्गति का नाश हो जाता है।

हे प्रभो! हमने अन्य मत की हजारों प्रतिमायें देखी हैं परंतु आपकी शांत और सौम्य मुद्रा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मूरत हमें अच्छी नहीं लगती।

हे प्रभो! आप तीन लोकों के सम्राट हैं। मेरी भावना है कि आप मुझे दर्शन दें क्योंकि इसमें आपको तो कोई हानि नहीं है और इससे मेरी दुर्गति का नाश होता है ।

2

नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी

नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी, चरणो में सादर वंदन।
भटक भटक कर हार गये हम, मेटो भव–भव का क्रंदन।।टेक।।

मै अनादि से मोह नींद की, मदहोशी में मस्त रहा।
परद्रव्योकी आसक्ति में, हरपल में संलग्न रहा।।
खोज रहा परमें सुखको मैं, व्यर्थ गया सारा मंथन।।१।।

अनेकांतमय जिनवाणीने, मुक्ति का पथ दिखलाया।
सप्त तत्व और छह द्रव्यो का, ज्ञान जगत को करवाया।।
हम भी प्रभु वाणी पर चलकर, मेटेंगे भवके बंधन।।२।।

शुद्धातम स्वरुप से सज्जित, द्वादशांगमय जिनवाणी।
पावन वाणी को अपनाकर, लाखो संत बने ज्ञानी।।
जयवंतो हे माँ जिनवाणी, बार–बार हम करे नमन।।३।।

हे! नित्य जागृत करने वाली माता जिनवाणी आपके चरणों में सादर वन्दन करता हूँ। हे माता! इस संसार में भ्रमण करते–करते हम हार गये हैं। अब आपसे प्रार्थना है कि हमारे इन भवों–भवों के दु:खों का अन्त कर दो।

मैं अनादि काल से ही मोह नींद की बेहोशी में मस्त सोता रहा और इसके कारण परद्रव्यों–परसंयोगों में आसक्त बुद्धि रखकर सारा समय उनके संग्रह में ही लगा रहा। मैं व्यर्थ में ही परद्रव्यों में सुख की खोज करता रहा और इससे मेरा सारा चिंतन–मनन व्यर्थ ही हो गया।

अनेकांत बोधक जिनवाणी माता ने इस जगत को मोक्ष का मार्ग दिखाकर, सात तत्व और छह द्रव्यों का सम्यक ज्ञान करवाया है। अब हम भी जिनेन्द्र भगवान द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर इस संसार के बंधनों का नाश करेंगे।

द्वादशांगमय जिनवाणी माता सदैव शुद्धात्म स्वरूप को दिखाने वाली है तथा इसी वाणी को अपनाकर अनेक जीव ज्ञानी और मुनि बने हैं, अत: हे जिनवाणी माँ! हम आपको बारम्बार नमन करते हैं और भावना भाते हैं कि आप सदैव जयवन्त रहो।

3

वे मुनिवर कब मिलि हैं

वे मुनिवर कब मिलि, हैं उपगारी।
साधु दिगम्बर, नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी॥ टेक॥

कंचन कांच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी॥१॥

सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय–कारिमा टारी॥२॥

जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी॥३॥

हे आत्मन! कब ऐसा सुयोग आयेगा जब उन उपकार स्वरूपी मुनिराज के दर्शन होंगे! वे मुनिवर जो निर्वस्त्र हैं, समस्त परिग्रह से रहित हैं, जो शुद्ध ध्यान में लीन, समस्त आस्रवों से विरत होकर संवर रूपी आभूषण को धारण किये हुये हैं।

जिनके समक्ष शत्रु—मित्र, स्वर्ण व कांच, महल व श्मशान, जीवन व मृत्यु तथा सम्मान व अपमान सभी परिस्थितियां बराबर हैं अर्थात् जो इनको एक समान मानकर समता भाव रखते हैं, ऐसे साधु के मिलने का सुयोग कब होगा।

वे साधु जो सम्यक्ज्ञान की प्रधानता के बल से तप की अग्नि में समस्त परभावों की आहुति देते हैं। देह की कालिमा से अपने को भिन्न जानकर सुवर्ण के समान अपने शुद्ध स्वभाव के शोधन में ही लीन रहते हैं, उनके दर्शनों का सुयोग कब प्राप्त होगा।

ऐसे मुनिराज को भूधरदासजी दोनों हाथ जोड़कर विनय पूर्वक नमस्कार करके कहते हैं कि भाग्य के उदय से जिस दिन ऐसे साधु के दर्शन का सौभाग्य मिले, उस दिन पर सब कुछ न्यौछावर है क्योंकि वह दिन ही वास्तव में जीवन का सर्वोत्कृष्ट दिन होगा।

4

ममता की पतवार

ममता की पतवार ना तोडी, आखिर को दम तोड दिया।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।टेक।।

नरक में जिसने भावना भायी, मानुषतन को पाने की।
भेष दिगंबर धारण कर के, मुक्ति पद को पाने की।।
लेकिन देखो आज ये हालत, ममता के दीवाने की।
चेतन होकर जड द्रव्यो से, कैसा नाता जोड लिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।१।।

ममता के बंधन में बंधकर, क्या युग–युग तक सोना है ?
मोह अरीका सचमुच इसपर, हो गया जादु टोना है।।
चेतन क्या नरतन को पाकर, अब भी यूँ ही खोना है।
मन का रथ क्यों शिवमारग से, कुमारग को मोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।२।।

मत खोना दुनिया मे आकर, ये बस्ती अनजानी है।
जायेगा हर आनेवाला, जग की रीत पुरानी है।।
जीवन बन जाता यहाँ पंकज, सबकी एक कहानी है।
चेतन देखा निज स्वरूप तो, दुःख का दामन तोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।३।।

अज्ञानी जीव ने मोह ममत्व का पक्ष तो छोड़ा नहीं और इस मनुष्य पर्याय को व्यर्थ में गवाँ दिया। इस तरह मोक्षमार्ग से अनभिज्ञ जीव ने मोक्ष अर्थात् सुख के मार्ग का त्याग कर दिया।

जब यह जीव नरक गति में था तो वहाँ के दु:खों से डरकर इसने मनुष्य पर्याय की प्राप्ति की तथा दिगम्बर दीक्षा धारण करके मोक्ष पद को प्राप्त करने की भावना भाई थी। लेकिन मनुष्य पर्याय मिलने के बाद यह अपनी उस भावना को भूल गया और मोह में दीवाने इस जीव की आज ऐसी अवस्था हो गई कि इसने स्वयं चेतन द्रव्य होकर जड़ पुदगल द्रव्यों को अपना साथी मान लिया।

हे चेतन! मोह के बंधन में बंध कर क्या अनंत काल इस तरह ही व्यतीत करना है..? लगता है सचमुच इस चेतन आत्मा पर मोह शत्रु ने कोई जादू टोना सा कर दिया है जिससे इसे आत्मा का हित पसंद नहीं आता। हे चेतन! क्या इस दुलर्भ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके भी यूँ ही व्यर्थ में बरबाद करना है। पता नहीं क्यों यह अज्ञानी जीव अपने मन के रथ को मोक्ष के मार्ग से विपरीत संसार मार्ग की ओर ले जा रहा है।

हे चेतन! तुम इस क्षणभंगुर जगत के स्वरूप से अनजान हो। इसकी संगती में तुम अपने स्वरूप को मत भूल जाना। इस संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति का मरण निश्चित ही है, यह तो इस संसार की अनादि काल की परम्परा है। कवि कहते हैं कि यहाँ सभी अज्ञानी जीवों का एक जैसा ही व्यवहार देखा जाता है पर जो मनुष्य पर्याय का सदुपयोग करता है और अपने स्वरूप को पहचानता है तो उसके समस्त दुखों का संयोग छूट जाता है तथा उसे सुख अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

5

धरम बिना कोई नहीं

धरम बिन कोई नहीं अपना,
सब सम्पत्ति धन थिर नहिं जग में,
जिसा रैन सपना ।।धरम.।।टेक।।

आगें किया सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा सो पावैगा, तातें धर्म करना ।।१।। धरम.।।

ऐसे सब संसार कहत है, धर्म कियें तिरना।
परपीडा बिसनादिक सेवैं, नरक विषैं परना ।।२।। धरम.।।

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दारिद्री कैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ।।३।। धरम.।।

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना।
वन गिरि सरिता अगनि युद्ध में, धर्महि का सरना।४। धरम.।।

चित बुधजन सन्तोष धारना, पर चिन्ता हरना।
विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ।।५।। धरम.।।

हे जीव! इस जगत में सच्चे धर्म के अलावा अपना कोई साथी नहीं है। जगत के सभी संयोग धन—सम्पत्ति रात के स्वप्न के समान अस्थिर है ।

मुझे यह निर्णय हो गया है कि जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है और अब जो जैसा कर्म करेगा उसका फल आगामी काल में वैसा ही मिलेगा, इसलिये अब धर्म कार्य ही करना चाहिये।

जगत में सभी ज्ञानी जीव कहते हैं कि धर्म करने से ही संसार सागर से पार होते हैं और विषय भोग के सेवन तथा अन्य जीवों को दुख देने का फल तो नरक गति के दु:ख ही है।

जैसे राजा के पास सुख की सारी अनुकूल सामग्री होने पर भी बुखार आने पर उसे भी दुख होता है वैसे ही निर्धन व्यक्ति को भी बुखार आने पर दु:ख होता है अर्थात् पाप के उदय में सभी को दु:ख भोगना पड़ता है।

परिवार के नाती—पोते संबंधी आदि तो सभी स्वार्थ के साथी हैं और संकट ही उत्पन्न करने वाले हैं। अत: वन, पर्वत, नदी, अग्नि और युद्ध आदि स्थितियों में धर्म ही जीव को एकमात्र सहारा है।

बुधजन कवि कहते हैं कि इन सबको जानकर हमें मन में संतोष धारण करना चाहिये और अन्य चिन्ताओं को छोड़कर विपत्ति के आने पर समता भाव रखकर परमात्मा का, भगवन्तों का नाम स्मरण करना चाहिये।

6

सुन चेतन इक बात

सुन चेतन इक बात हमारी, तीन भुवन के राजा।
रंक भये बिललात फिरत हो, विषयनि सुख के काजा ।।१।।

चेतन तुम तो चतुर सयाने, कहाँ गई चतुराई।
रंचक विषयनि के सुखकारण, अविचल ऋद्धि गमाई ।।२।।

विषयनि सेवत सुख नहिं राई, दुःख है मेरु समाना।
कौन सयानप कीनी भौंदू, विषयनि सों लपटाना ।।३।।

इस जग में थिर रहेना नाहीं, तैं रहेना क्यों माना।
सूझत नाहिं कि भांग खाइ है, दीसै परगट जाना ।।४।।

तुम को काल अनन्त गये हैं, दुःख सहते जगमांही।
विषय कषाय महारिपु तेरे, अजहूँ चेतत नाहीं ।।५।।

ख्याति लाभ पूजा के काजें, बाहिज भेष बनाया।
परमतत्त्व का भेद न जाना, वादि अनादि गँवाया ।।६।।

अति दुर्लभ तैं नर भव लहेकें, कारज कौन समारा।
रामा रामा धन धन साँटें, धर्म अमोलक हारा ।।७।।

घट घट साईं मैंनू दीसै, मूरख मरम न पावे।
अपनी नाभि सुवास लखे विन, ज्यों मृग चहुँ दिशि धावै ।८।

घट घट साई घट सा नाईं, घटसों घट में न्यारो।
घूंघट का पट खोल निहारो, जो निजरूप निहारो ।।९।।

ये दश माझ सुनैं जो गावै, निरमल मन सा कर के।
'द्यानत' सो शिव सम्पति पावै, भवदधि पार उतर के ।।१०।।

हे चेतन प्राणी! हमारी एक बात को ध्यान से सुन! अरे तुम तो तीन लोक के स्वामी हो और फिर भी तुम इन्द्रिय विषय भोगों में लुब्ध होकर दरिद्री बनकर दुखी हो रहे हो।

अरे चेतन! तुम तो बहुत चतुर हो, सयाने हो, वह तुम्हारी चतुराई कहाँ गई? थोड़े से इन्द्रिय–विषयों के सुख के कारण, शाश्वत रहने वाली ऋद्धि को तुमने गवाँ दिया है।

इन्द्रिय–विषयों के सेवन में राई जितना भी सुख नहीं है। उल्टा इनके सेवन करने में मेरू पर्वत के समान महादुःख है। अरे मूर्ख! तब भी तू इन विषयों से लिपटा हुआ है, यह तूने कैसा सयानापन किया है ।

इस अस्थिर जगत में कुछ भी स्थिर नहीं रहता है तो तू सदा काल रहेगा तूने ऐसा क्यों मान लिया? प्रकट में संयोगों को जाता देखकर भी तुझे ख्याल नहीं आता, लगता है कि तूने भांग खा रखी है जिससे तेरी सोचने –समझने की शक्ति क्षीण हो गई है।

इस जगत में दुःख सहते–सहते तुम्हें अनन्तकाल व्यतीत हो गये तब भी तुझे भान नहीं हुआ कि ये इन्द्रिय विषय और कषाय ही तेरे महान शत्रु हैं।

जगत में यश, लाभ और पूजा(मान) के लिये तूने अपना यह बाहर का वेश बना रखा है। तूने परमतत्त्व को अर्थात् वस्तु स्वरूप को तो समझा नहीं और व्यर्थ में ही अनादिकाल से समय गँवाता जा रहा है।

यह दुर्लभ नर देह को पाकर तुमने क्या कार्य सम्पन्न किया? स्त्री–पुत्र और धन–सम्पदा के लिये तूने अमूल्य जिन धर्म को गँवा दिया।

ज्ञानी जीवों को घट–घट में, प्रत्येक देह में अनन्त शक्तिशाली आत्मा दिखाई देती है पर मूर्ख उसे समझ नहीं पाते। जैसे अपनी नाभि में रखी कस्तूरी की सुगंध से अनजान मृग उसके लिये सभी दिशाओं में दौड़ता फिरता है।

घट–घट में आत्मा विद्यमान होने पर भी उसका स्वरूप घट से अलग है तथा वह घट में रहकर भी घट से भिन्न है। जिस प्रकार घूंघट को हटाने के बाद स्त्री का सुंदर मुख दिखाई देता है वैसे ही जब यह जीव इस घट अर्थात् देह से भिन्न आत्म तत्त्व को दृष्टिंगत करता है तब उसको निज आत्मस्वरूप के दर्शन होते हैं।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि जो अपने मन को निर्मलकर इन दस पदों को सुनते और धारण करते हैं वे संसार समुद्र से पार होकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

7

हम न किसी के

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका ब्योहारा...
तन सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ।।
हम न किसी के .... ।।

पुन्य उदय सुखका बढ़वारा, पाप उदय दुःख होत अपारा।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ।।१।।

मैं तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला, पर संजोग भया बहु मेला।
थिति पूरी करि खिर खिर जांहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ।।२।।

राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं।
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतनपदमाहीं ।।३।।

हे जीव! हम न तो किसी के हैं और न ही कोई हमारा है। जग में जो भी अपना–पर का व्यवहार प्रचलित है वह नितान्त झूठा है, अस्थिर है। यह सब परिवारजन तो इस शरीर मात्र से ही सम्बन्धित है अतः हमने यह तन भी हमसे न्यारा है, भिन्न है ऐसा जान लिया है।

पुण्य के उदय में सुख की वृद्धि होती है और पाप उदय में अपार दुःख उत्पन्न होता है। लेकिन वास्तव में पाप और पुण्य ये दोनों ही संसार का कारण हैं, मैं तो इन सबका ज्ञाता–दृष्टा मात्र हूँ।

मैं तीनों लोक में और तीनों काल में सदा अकेला ही हूँ। परद्रव्य के संयोग के कारण यह परिवारजन का मेला मिल गया है। लेकिन जैसे–जैसे इनकी स्थिति पूरी होती जाती है, ये सभी संयोग विघटित होते जाते हैं, खत्म होते जाते हैं इसलिये इन संयोगों के प्रति न मुझे हर्ष है और न ही कोई शोक है।

यह जीव राग भाव के कारण अन्य जीवों को सज्जन और द्वेष भाव के कारण अन्य जीवों को दुर्जन जानता है। परन्तु द्यानतरायजी कहते हैं कि राग और द्वेष ये दोनों भाव मेरे नहीं हैं। मेरा तो एकमात्र यह चेतनपद ही है, जो इन दोनों परिणामों से भिन्न है।

8

जिया कब तक

जिया कब तक उलझेगा, संसार विकल्पों में।
कितने भव बीत चुके, संकल्प विकल्पों में।।टेक।।

उड–उड कर यह चेतन, गति गति में जाता है।
रागों में लिप्त सदा, भव भव दुःख पाता है।।
क्षण भर को भी न कभी, निज आतम ध्याता है।
निज तो न सुहाता है, पर ही मन भाता है।
यह जीवन बीत रहा, झुठे संकल्पों में।। जिया–१।।

निज आत्मस्वरूप लखो, तत्वों का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जावे, समकित प्रगटे सुखमय।।
निज परणति रमण करे, हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चय, छूटे भवदुःख भयमय।।
सुख ज्ञान अनन्त मिले, चिन्मय की गल्पों में।। जिया–२।।

शुभ अशुभ विभाव तजो, हैं हेय अरे आस्रव।
संवर का साधन ले, चेतन का कर अनुभव।।
शुद्धातम का चिंतन, आनन्द अतुल अभिनव।
कर्मों की पगध्वनि का, मिट जावेगा कलरव।।
तू सिद्ध स्वयं होगा, पुरुषार्थ स्वकल्पों में।। जिया–३।।

हे मन! तुम कब तक इस असार संसार के विकल्पों में उलझोगे। जिन संकल्प और विकल्पों के जाल में उलझकर तुमने अनन्त भव व्यर्थ बिता दिये ।

हे मन! मिथ्या मान्यता के कारण यह जीव चारों गतियों में भ्रमण करता रहता है और राग के स्वरूप को अपना मानकर हर पर्याय में दु:ख भोगता है। एक क्षण के लिये भी अपने आत्मा का ध्यान नहीं करता, इस जीव को निज आत्मस्वरूप तो पंसद नहीं आता और पर पदार्थ की रमणता ही सुहाती है। इस तरह यह संपूर्ण जीवन इन बाहर के झूठे पुरूषार्थ में ही व्यतीत होता जाता है।

हे चेतन! अब सम्यक् तत्त्वों का निर्णय कर अपने आत्मा के स्वरूप को देखो जिससे मिथ्यात्व का अभाव हो जायेगा और सुख स्वरूपी सम्यकदर्शन प्रगट होगा तथा इसी सम्यग्दर्शन के द्वारा अंतर परिणति में सम्यकज्ञान व सम्यकचारित्र रूपी रत्नत्रय की प्राप्ति होगी। जिससे नियम से समस्त दुखों से छुटकारा रूपी मोक्ष की प्राप्ति होगी।

हे जीवराज! अब शुभ और अशुभ विभावी भावों का त्याग करो, क्योंकि ये सभी आस्रव होने से छोड़ने योग्य हैं। तुमतो संवर को साधन बनाकर अपने चेतन तत्त्व का अनुभव करो। तुम अनुपम और नित नवीन आनंद देने वाले इस शुद्धात्मा का चिन्तन करो, जिससे कर्मबन्धन की श्रृंखला का अभाव होगा और तुम स्वयं अपने ही पुरूषार्थ से अल्प समय में सिद्ध दशा की प्राप्ति करोगे।

जिया कब तक

नर रे नर रे नर रे, तू चेत अरे नर रे।
क्यों मूढ़ विमूढ़ बना, कैसा पागल खर रे।।
अन्तर्मुख हो जा तू, निज में निज रस भर रे।
पर अवलंबन तज रे, निज का आश्रय कर रे।।
पर परिणति विमुख हुआ, तो सुख पल अल्पों में।।जिया–४।।

तू कौन कहां का है, अरु क्या है नाम अरे।
आया है किस घर से, जाना किस गाँव अरे।।
सोचा न कभी तुने, दो क्षण की छांव अरे।
यह तन तो पुद्गल है, दो दिन की ठांव अरे।।
तू चेतन द्रव्य सबल, ले सुख अविकल्पों में।।जिया–५।।

यदि अवसर चूका तो, भव–भव पछतायेगा।
फिर काल अनन्त अरे, दुःख का घन छायेगा।।
यह नरभव कठिन महा, किस गति में जायेगा।
नरभव भी पाया तो, जिनश्रुत नहिं पायेगा।।
अनगिनत जन्मों में, अनगिनत कल्पों में।।जिया–६।।

हे मनुष्य! सुन.. सुन.. तू अभी भी जाग जा, सचेत हो जा तू क्यों पागल पशु की तरह मूर्ख बना हुआ है। अब तू अन्तर्मुख हो जा और अपने ज्ञान की पर्याय में आत्म स्वभाव की महिमा को ला, पराधीनता को छोड़कर अपने स्वरूप का आश्रय कर। यदि पर तरफ की दृष्टि छोड़ देगा तो कुछ ही समय में तुझे अतीन्द्रिय सुख की प्राप्त होगी।

हे चेतन! तू कौन है, तेरा क्या स्वरूप है और तेरा वास्तविक नाम क्या है, कहाँ से तू आया है और कहाँ तुझे जाना है? क्या कभी कुछ समय निकालकर तूने इन सब बातों पर विचार किया है कि यह शरीर तो जड़ पुद्गल का बना हुआ है और कुछ समय मात्र के लिये ही इसका संग तुझे प्राप्त हुआ है। तुम तो स्वयं अतुल बल के धनी चेतन द्रव्य हो इसलिये जड़ पदार्थों को छोड़कर निर्विकल्प सुख को शीघ्र प्राप्त करो।

हे जीव! यदि अब भी यह मनुष्य पर्याय का दुर्लभ अवसर चला गया तो तुझे न जाने कितने भवों तक पछताना पड़ेगा और फिर अनन्त काल तक भयंकर दु:खों को भोगना पड़ेगा। यदि इस दुर्लभता से प्राप्त मनुष्य पर्याय का सदुपयोग नहीं किया तो पता नहीं तुझे कौनसी गति प्राप्त होगी और यदि पुण्योदय से मनुष्य पर्याय प्राप्त भी हो गई तो जिनकुल और जिनवाणी प्राप्त नहीं होगी और फिर से अनन्त जन्मों और अनंत कालों तक तुझे इस संसार में भटकना पड़ेगा।

9 सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे,
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ।।टेक।।

रोगादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन ताकी विधि ठनी ।।१।।

वरणादिक विकार पुद्गलके, इनमें नहिं चैतन्य निशानी।
यद्यपि एकक्षेत्र–अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ।।२।।

मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत परपरनति हित मानी ।।३।।

'भागचन्द्र' निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी।
नित अकलंक अवंक शंक बिन, निर्मल पंक बिना जिमि पानी ।।४।।

दिगम्बर वीतरागी ज्ञानी संत निराबाध (बाधारहित) अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करते हैं।

वे मुनिवर विचार करते हैं कि ये रोग तो शरीर के आधार से हुये हैं और चेतन तत्व होने से इनसे मेरा कोई नुकसान नहीं है। जिस प्रकार अग्नि में ईंधन जलता है परन्तु अग्नि ईंधन रूप नहीं होती, तथा जैसे आकाश में अग्नि की उष्णता दिखाई देने पर भी आकाश के प्रदेश जलते नहीं हैं तात्पर्य यह है कि आत्मा सकल ज्ञेयों को जानने पर भी ज्ञेय रूप नहीं होता।

वर्ण, रस आदि ये सभी पुद्गल का विकारी परिणमन है। इसमें चैतन्य का अंश मात्र भी नहीं है। यद्यपि एक क्षेत्र में मिले हुये दिखाई देने पर भी शरीर और आत्मा दोनों के लक्षण सदैव भिन्न–भिन्न हैं।

जिस प्रकार नमक के सारे प्रदेशों में खारापन व्याप्त है उसी प्रकार मेरे सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों में एक मात्र ज्ञायक की अनुभूति ही है। जब तब इस जीव को आत्म तत्त्व की निराकुलता के आनन्द की अनुभूति नहीं होती तब तक यह जीव पर द्रव्यों से अपना हित मानता रहता है।

भागचन्द्र कवि कहते हैं कि मुनिभगन्त विचार करते हैं कि निश्चय से यह आत्मा सिद्धों के समान, निरद्वन्द और विकार रहित है। जिस प्रकार कीचड़ रहित पानी शुद्ध और निर्मल होता है वैसे ही यह आत्मा सदा कलंक से रहित, आश्चर्यकारी और शंकादि दोषों से रहित चैतन्य वस्तु है ।

10

देखा आतमरामा

देखा आतमरामा, मैंने देखा आतमरामा ।।टेक।।

रूप फरस रस गंध तैं न्यारा, दरस–ज्ञान–गुनधामा।
नित्य निरंजन जा कै नाहीं, क्रोध लोभ मद कामा ।।१।।
।।मैंने.।।

भूख प्यास सुख दुःख नहिं जा कै, नाहिं बन पुर गामा।
नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ।।२।।
।।मैंने.।।

भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गल का जामा।
'बुधजन' संगति जिनगुरु की तैं, मैं पाया मुझ ठामा ।।३।।
।।मैंने.।।

ज्ञानी जीव ऐसा कहते है कि मैंने आतमराम को देख लिया अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

कैसा है वह आतमा – स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित दर्शन, ज्ञान आदि गुणों का धाम हैं और क्रोध, लोभ, मान और माया आदि कषाय परिणामों की कालिमा से रहित होने से सदा पवित्र ही है ।

और जिसको भूख–प्यास, सुख–दु:ख आदि की व्याधि नहीं है तथा न ही उसके पास वन, नगर और गाँव रूपी परिग्रह हैं। मेरी आत्मा का कोई स्वामी नहीं, कोई नौकर नहीं और न ही पिता या मामा जैसे कोई सम्बन्धी हैं।

बुधजन कवि कहते हैं कि अनादि काल से इस पुद्गल द्रव्य की प्रीति के कारण संसार में भटकते हुये अब मैं थक गया हूँ। अत: अब, जब मैंने वीतरागी भगवन्तों और श्री मुनिराज की संगति की तो मुझे मेरा आत्मा अर्थात् मेरा निज स्थान मिल गया।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – २

1

तिहारे ध्यान की मूरत

तिहारे ध्यान की मूरत, अजब छवि को दिखाती है।
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती है।।टेक।।

तेरे दर्शन से हे स्वामी, लखा है रूप मैं मेरा।
तजूं कब राग तन–धन का, ये सब मेरे विजाती हैं।।१।।

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी।
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है।।२।।

जगत के देव हठ ग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं।
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती है।।३।।

मुझे कुछ चाह नहीं जग की, यही है चाह स्वामी जी।
जपूं तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है।।४।।

तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे।
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है।।५।।

हे प्रभो! आपकी ध्यानस्थ मुद्रा एक अलौकिक स्वरूप को प्रदर्शित करती है। जिसके अवलोकन मात्र से भोगों की इच्छाओं का त्याग करके आत्मा को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।

हे प्रभो! आपके दर्शन करने से मुझे मेरे आत्मस्वरूप का दर्शन हुआ है। जिसके कारण अब ऐसा लगने लगा कि मैं किस क्षण इस नश्वर देह और संयोगों के राग का त्याग करूँ क्योंकि ये सब वास्तव में मेरे स्वरूप से भिन्न हैं।

हे प्रभो! मैंने विश्व के सारे भगवानों को देखा लेकिन इन सभी में कोई रागी और कोई द्वेषी भासित होता हैं क्योंकि कोई भगवान हाथ में शस्त्रादि लिये हुये हैं तो किसी को स्त्रियों का संग पंसद है।

हे प्रभो! संसार के ये देव एकांत को ग्रहण करने वाले हैं और मिथ्या नय का पक्ष धरने वाले हैं। आप ही सम्यक् नयों के कथन करने वाले ज्ञानी हैं जिससे आपके वचनों का कोई विरोध नहीं कर सकता।

हे प्रभो! मुझे इस संसार सम्बन्धी कोई इच्छायें नहीं है। मेरी तो एक मात्र यही भावना है कि मैं मेरा कल्याण करने वाली आपके नाम की माला का सदा स्मरण करता रहूँ।

हे प्रभो! आपकी सौम्य मुद्रा को देखकर मुझे भी अपने आत्म कल्याण की इच्छा जागृत होने लगी है और यही आत्मकल्याण की इच्छा ही नियम से हम भक्तों को संसार सागर से पार कर देगी।

2 जिनबानी के सुनै सौं मिथ्यात

जिनबानी के सुनै सौं मिथ्यात मिटै।
मिथ्यात मिटै समकित प्रगटे ।।टेक।।

जैसें प्रात होत रवि ऊगत,
रैन तिमिर सब तुरत फटै।।१।।जिनबानी.।।

अनादि काल की भूलि मिटावै,
अपनी निधि घट घट में उघटे।

त्याग विभाव सुभाव सुधारै,
अनुभव करतां करम कटै।।२।।जिनबानी.।।

और काम तजि सेवो याकौं,
या बिन नाहिं अज्ञान घटै।

बुधजन या भव परभव मांहीं,
बाकी हुंडी तुरत पटे।।३।।जिनबानी.।।

हे जीव! जिनेन्द्र भगवान की वाणी अर्थात् जिनवाणी के श्रवण करने से मिथ्या मान्यता का विनाश होकर सम्यक्त्व की प्रगटता होती है तथा जैसे प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर रात्रिकालीन अन्धकार तुरन्त विलय को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व रूपी सूर्य के उदय होते ही मिथ्यात्व का नाश हो जाता है।

जिनवाणी माता जीव की अनादि काल की भूल मिटाकर स्वआत्मनिधि को पूर्ण रूप में प्रगट कराती है। विभावी भावों का त्याग कराके स्वभाव का ग्रहण कराती है और उस आत्मा के अनुभव के द्वारा ही कर्मों का नाश होना बताती है।

अतः हे जीव! बाकी के सभी बाह्य कार्यों को त्यागकर जिनवाणी की ही सेवा करो क्योंकि इसके सुने बिना समझे बिना अज्ञान का नाश नहीं होता। बुधजन कवि कहते हैं कि जिनवाणी के श्रवण करने वालों के इस भव के व पूर्व भवों के कर्ज तुरंत पट जाते हैं अर्थात् पुराने कर्म तुरन्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं व सद्गति की प्राप्ति होती है।

3 ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावे

ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावै,
सो फेर न भव में आवै ।।टेक.।।

संशय विभ्रम मोह–विवर्जित, स्वपर स्वरूप लखावै।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्म कलंक मिटावै।।१।। ऐसा.

भवतन भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै।
मोह विकार निवार निजातम–अनुभव में चित लावै।।२।। ऐसा.

त्रस–थावर वध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावै।
रागादिकवश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै।।३।। ऐसा.

बाहिर नारि त्यागि अंतर, चिद्ब्रह्म सुलीन रहावै।
परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग बहावै।।४।। ऐसा.

पंच समिति त्रय गुप्ति पाल, व्यवहार–चरनमग धावै।
निश्चय सकल कषाय रहित है, शुद्धातम थिर थावै।।५।। ऐसा.

कुंकुम पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुकलको ध्यावै।।६।। ऐसा.

जाके सुख समाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै।
'दौल' तासपद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै।।७।। ऐसा.

ऐसा योगी (जिसका स्वरूप नीचे वर्णित है) अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा, अर्थात् करेगा ही। जिससे संसार में फिर उसका आवागमन नहीं होगा।

जो संशय, विभ्रम और विमोह से भिन्न, अपना और अन्य का अर्थात् स्व और पर के भेद स्वरूप को स्पष्ट जानता व देखता है। जो अपने परमात्म स्वरूप को जानकर आत्मा पर लगे कर्मरूपी कलंक को मिटाता है, ऐसा योगी शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो संसार–शरीर व भोगों से विरक्त होकर नग्न वेश को धारण करता है और मोहनीय कर्म के विकारों को मिटाकर अपनी आत्मा के अनुभव में अपने मन को लगाता है, ऐसा योगी अभय पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो सदैव प्रमाद दशा को छोड़कर स्थावर (एकेन्द्रिय) और त्रस (दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय) जीवों की हिंसा का त्यागी हो और राग–द्वेष के वश होकर भी कभी झूठ न बोले और बिना दिया हुआ एक तिनका भी ग्रहण न करे, ऐसा योगी अभय पद क्यों न प्राप्त करेगा।

जो बाह्य में स्त्री त्याग अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तथा अपने अंत:करण में अपने चैतन्यगुणों में निमग्न रहवे और पूर्णतया धर्म का सार रूप अपरिग्रह अर्थात् बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित जीवन का निर्वाह करे, ऐसा योगी अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो व्यवहार में पाँच समिति, तीन गुप्ति का निरतिचार पालन करते हुये शुद्ध आचरण को धारण करे और फिर निश्चय से सभी कषायों को छोड़कर अपने शुद्ध आत्मध्यान में सदा स्थिर हो, ऐसा योगी अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

केसर या कीचड़, शुत्र या नौकर, मणि या तिनका, सर्प हो या माला इन सबमें अर्थात् अनुकूल व प्रतिकूल दोनों संयोगो में समताभाव रखे। आर्त और रौद्र नाम के दोनों अपध्यानों को छोड़कर धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्यावे, ऐसा योगी अभय पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जिसके अलौकिक सुख के भंडार की महिमा का वर्णन करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है अर्थात् इन्द्र भी उनके गुणों को पूर्ण रूप से नहीं कह सकता। ऐसे योगी के लिये दौलतरामजी कहते हैं कि जो ऐसे योगी मुनिवर के चरणों की भक्ति करता है, सेवा करता है वह स्थिर रूप से शाश्वत ऋद्धियों को प्राप्त करता है।

4

हम तो कबहुँ

हम तो कबहुं न निज घर आये ।।टेक।।

पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ।।
हम तो....

परपद निजपद मानि मगन है, पर परनति लपटाये।
शुद्ध–बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ।।१।।
हम तो....

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ।।२।।
हम तो....

यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजौ अजहूँ विषयन को, सत्गुरु वचन सुनाये ।।३।।
हम तो....

हे आत्मन्! हमने कभी अपने वास्तविक घर में निवास नहीं किया और अपने चेतन स्थान को छोड़कर अनादि से हम चार गतियों में ही भटकते रहे और अनेकों बार अनेक नाम धारण किये अर्थात् भिन्न—भिन्न पर्यायों में अनेक नामों से जाने जाते रहे।

हम पर पद को ही अपना वास्तविक स्थान मानकर उसमें ही लीन हो गये, अपनी आत्मा के गुणों को तो पहचाना नहीं, और पर परिणति में उलझते रहे, उनसे लिपटे रहे। यह आत्मा मूल में तो शुद्ध, ज्ञानवान, सुख का भंडार, पूर्ण सुन्दर है लेकिन हमने उस आत्मा के अनुपम गुणों का कभी चिन्तन ही नहीं किया।

हमने चारों गतियों में भ्रमण करते हुये प्राप्त देह को ही अपना स्वरूप माना और प्राप्त पर्याय में ही अपनेपन की कल्पना करते रहे। यह आत्मा तो निर्मल, अखण्ड, विशाल व अविनाशी है। हमें इन चैतन्य के गुणों की महिमा ही नहीं आई।

आतमा का हित क्या है उसे तो जाना ही नहीं। यही हमारी बहुत बड़ी भूल रही और अब हमारे पास मात्र पछताने के और कोई मार्ग नहीं बचा। अत: दौलतरामजी कहते हैं कि अब भी समय है इन भोग विषयों का तत्क्षण त्याग करना ही उचित है तथा सच्चे गुरूओं की वाणी ही सुनने योग्य है।

5

चेतन यह बुधि

चेतन यह बुधि कौन सयानी,
कही सुगुरु हित सीख न मानी ।।
कठिन काकताली ज्यों पायौ,
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी ।। चेतन.।।

भूमि न होत चाँदनी की ज्यों,
त्यों नहिं धनी ज्ञेय का ज्ञानी।
वस्तुरूप यों तू यों ही शठ,
हटकर पकरत सोंज विरानी ।।१।। चेतन.।।

ज्ञानी होय अज्ञान राग–रुषकर,
निज सहज स्वच्छता हानी ।
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन,
तहाँ अनिष्ट इष्टता ठानी ।।२।। चेतन.।।

चाहै सुख, दुःख ही अवगाहै,
अब सुनि विधि जो है सुखदानी।
'दौल' आपकरि आप आप मैं,
ध्याय ल्याय लय समरससानी ।।३।। आप.।।

हे चेतन! यह तेरी कौन सी चतुर बुद्धि है कि तू सद्गुरू की हितकारी शिक्षा को स्वीकार नहीं करता? अरे, काकतालिय न्याय की भाँति संयोगवश अर्थात् बड़ी कठिनाई से तुझे यह मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर मिला है अतः अब तो सद्गुरू की शिक्षा को स्वीकार कर ।

हे चेतन! जिस प्रकार चाँदनी में प्रकाशित होने वाली भूमि चाँदनी की नहीं होती, उसी प्रकार यह आत्मा ज्ञेय पदार्थों को जानता हुआ भी उनका स्वामी नहीं होता, यही वस्तु का स्वरूप है। किन्तु हे मूर्ख! तू व्यर्थ ही हठ करके पर परिणति व संयोगों को पकड़ता है।

हे चेतन! तू वास्तव में शुद्ध ज्ञानस्वभावी है, किन्तु अज्ञानमय राग–द्वेष करके तूने अपने सहज स्वभाव की स्वच्छता को नष्ट कर लिया है। इन्द्रियाँ तो जड़ हैं तथा उनके विषय भी अचेतन हैं, उनमें कोई भी इष्ट या अनिष्ट नहीं है, किन्तु तूने स्वयं ही उनमें इष्ट–अनिष्टपना मान रखा है।

हे चेतन! तू चाहता तो सुख है, किन्तु अनादि से दुःख ही पाता है, अतः अब सद्गुरू द्वारा बताये हुये इस सुखदायक उपाय को सुन एवं समझ। दौलतरामजी कहते है कि यदि यह आत्मा स्वयं, स्वयं के द्वारा और स्वयं में ही ध्यानपूर्वक लीन हो जाये तो समता रस के आनंद में निमग्न हो सकता है।

6

हे मन तेरी को कुटेव

हे मन तेरी को कुटेव यह, करनविषय में धावै है।।टेक।।

इनही के वश तू अनादि तैं, निजस्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन छीन समाकुल, दुर्गति विपति चखावै है।।१।।

फरस विषय के कारन बारन, गरत परत दुःख पावै है।
रसना इन्द्रियवश झष जल में, कंटक कंठ छिदावै है।।२।।

गन्धलोल पंकज मुद्रित में, अलि निज प्रान खपावै है।
नयनविषयवश दीप–शिखा में, अंग पतंग जरावै है।।३।।

करन विषयवश हिरन अरन में, खलकर प्रान लुटावै है।
'दौलत' तज इनको जिन को भज, यह गुरु सीख सुनावै है।।४।।

हे मन! यह तेरी कैसी बुरी आदत है कि तू पंच इन्द्रिय–विषयों में ही दौड़ लगाता है।

इन्हीं के वशीभूत होने के कारण तू अनादि काल से अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पा रहा है तथा इन इन्द्रिय–विषय के पराधीन होकर जो कि तुझे प्रत्येक क्षण आकुलता पैदा करने वाले हैं और दुर्गति के दुःखों का अनुभव कराने वाले हैं।

हे मन! जैसे स्पर्शन इन्द्रिय के विषय के कारण हाथी हथनी के पीछे गढ्ढे में गिरकर बहुत दुःख पाता है। रसना इन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली जल में रहती हुई भी कांटे से अपने कण्ठ का छेदन करवाती है।

घ्राण इन्द्रियवश गन्ध का लोभी भ्रमर कमल में बन्द होकर अपने प्राण गँवा देता है। चक्षु इन्द्रिय के विषयवश पतंगा दीपक की लौ में गिरकर अपना शरीर जला देता है।

कर्ण इन्द्रिय के विषयवश हिरण जंगल में दुष्टों के चंगुल में फँसकर अपने प्राण गँवा देता है।

अतः कविवर दौलतराम जी कहते हैं कि हे मन! सद्‌गुरु तुझे ऐसी शिक्षा दे रहे हैं कि तू इन इन्द्रिय विषयों का त्याग कर और जिनेन्द्र भगवान का ही भजन कर।

7

बाबा मैं न काहू का

बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ।।बाबा.।।टेक।।
सुर नर नारक तिरयक गति मैं,
मो कों करमन घेरा रे ।।१।।बाबा.।।

मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उरझेरा रे।
तन धन बसन भवन जड़ न्यारे,
हूँ चिन्मूरत न्यारा रे ।।२।।बाबा.।।

मुझ विभाव जड़ कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे।
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा,
अब आनन्दघन हेरा रे ।।३।।बाबा.।।

खरच खेद नहीं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप तप व्रत श्रुत सार यही है,
बुधजन कर न अबेरा रे ।।४।।बाबा.।।

हे भाई! इस जगत में मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, न तो मैं किसी का हूँ और न ही कोई मेरा है।

मुझे तो स्वर्ग, नरक, तिर्यन्च और मनुष्य इन चार गतियों में कर्मों ने मेरी स्वयं की भूल से बाँध रखा है।

माता–पिता, पुत्र–पत्नी, कुल–परिवारजन ये सब मोह के कारण होने से मुझे उलझाने वाले है तथा तन, धन, वस्त्र, भवन आदि ये जड़ पदार्थ तो मुझसे अत्यंत भिन्न हैं और मैं तो इनसे पृथक चैतन्यमूर्ति न्यारा तत्त्व हूँ।

मेरे में उत्पन्न होने वाले विकारी भाव पुद्गल कर्मों द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, उन कर्मों ने हमें परेशान कर दिया है, अतः अब मैंने विभावी भावों के चक्र का त्यागकर अपने स्वभाव को धारण कर लिया है, तथा अब मैंने आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

अतः बुधजन कवि कहते हैं कि जब से मैंने अपने चैतन्य आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है तब से मैं किंचित भी दुःख का अनुभव नहीं करता हूँ। समस्त जप, तप, व्रत और जिनागम का भी यही सार है, अतः हे जीव! अब तुझे आत्मकल्याण में देर नहीं करनी चाहिये।

8

अहो भवि प्राणी चेतिये

अहो भवि प्राणी चेतिये हो, छिन छिन छीजत आव।।टेक।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल रटत है, कर निज हित अब दाव ।।अहो.।।

जो छिन विषय भोग में खोवत, सो छिन भजि जिन नाम।
वातें नरकादिक दु:ख पैहे, यातें सुख अभिराम ।।अहो.।।१।।

विषय भुजंगम के डसे हो, रुले बहुत संसार।
जिन्हें विषय व्यापै नहीं हो, तिनको जीवन सार ।।अहो.।।२।।

चार गतिनिमें दुर्लभ नर भव, नर बिन मुक्ति न होय।
सो तैं पायो भाग उदय हों, विषयनि–सँग मति खोय ।।अहो.।।३।।

तन धन लाज कुटुँब के कारन, मूढ़ करत है पाप।
इन ठगियों से ठगायकै हो, पावै बहु दु:ख आप ।।अहो.।।४।।

जिनको तू अपने कहै हो, सो तो तेरे नाहिं।
कै तो तू इनकों तजै हो, कै ये तुझे तज जाहिं ।।अहो.।।५।।

पलक एक की सुध नहीं हो, सिर पर गाजै काल।
तू निचिन्त क्यों बावरे हो, छांडि दे सब भ्रम जाल ।।अहो.।।६।।

भजि भगवन्त महन्त को हो, जीवन–प्राण आधार।
जो सुख चाहै आपको हो, 'द्यानत' कहै पुकार ।।अहो.।।७।।

हे भव्य प्राणी! तू अब चेत, जाग जा! एक—एक क्षण करके तेरी आयु बीती जा रही है और यह घड़ी हर क्षण टिक—टिक आवाज कर कह रही है कि अभी भी अवसर है अपने हित का कोई कार्य कर लो।

हे जीव! जो क्षण तू विषय—भोगों में खो रहा है उस क्षण को तू श्री जिनेन्द्र भगवान के नाम को भजने में लगा क्योंकि विषय—भोगों से तो नरकादिक दु:ख मिलते हैं और जिन नाम के सुमिरन से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

विषय—भोगरूपी सर्प के डसने पर बहुत काल तक संसार में भटकना पड़ता है, अत: जिनके जीवन में विषय भोग नहीं है वास्तव में उनका जीवन ही सार स्वरूप है, प्रयोजनवान है।

चारों गतियों में अत्यंत दुर्लभता से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है और इसके बिना मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है। ऐसा मनुष्य जन्म तुमने पुण्य उदय से प्राप्त कर लिया है अत: अब विषय भोगों में लगाकर इसे बरबाद मत करो।

अज्ञानी मनुष्य इस देह, धन, इज्जत और कुटुम्ब के कारण पाप कार्य करता है और इन ठगों से ठगा जाकर वह स्वयं बहुत दु:ख पाता है।

जिनको तू अपना कहता है, वे तो तेरे हैं नहीं क्योंकि आयु समाप्ति पर या तो तू उनको छोड़ देगा अन्यथा ये तुझको छोड़कर चले जायेंगे।

हे जीव! काल सदा सिर पर मंडरा रहा है और एक पल का भी विश्वास नहीं है, ऐसे समय में भी मूर्ख तू निश्चिन्त क्यों हो गया है? यह सब भ्रमजाल है इसको छोड़ दे।

द्यानतरायजी पुकारकर कहते हैं कि जो तू अपना सुख चाहता है तो जिनेन्द्र भगवान का भजन कर, यह ही वास्तव में तेरे जीवन का आधार है।

9

ज्ञानी जीव निवार भरमतम

ज्ञानी जीव निवार भरमतम,
वस्तुस्वरूप विचारत ऐसैं ।।टेक।।

सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतैं हैं भिन्नप्रदेशैं ।
इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवैं वैसे ।।१।। ज्ञानी.।।

देह अचेतन चेतन मैं, इन परनति होय एक सी कैसैं ।
पूरनगलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसैं ।।२।। ज्ञानी.।।

पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा रागरुष द्वंद भयेसैं ।
नसै ज्ञान निज फँसै बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसैं ।।३।। ज्ञानी.।।

विषयचाह दवदाह नसै नहिं, विन निज सुधा सिंधुमें पैसैं ।
अब जिनवैन सुने श्रवननतैं, मिटे विभाव करूं विधि तैसैं ।।४।। ज्ञानी.।।

ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहितहेत विलम्ब करेसैं ।
पछताओ बहु होय सयाने चेतन, 'दौल' छुटो भव भयसैं ।।५।। ज्ञानी.।।

ज्ञानी जीव अपने भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करके वस्तु स्वरूप का विचार इस प्रकार करते हैं कि –

पुत्र, स्त्री, भाई, धन आदि पदार्थ तो स्पष्टतया पर हैं, क्योंकि इनके प्रदेश ही मुझसे भिन्न हैं। इन पदार्थों की परिणति इनके स्वयं के आश्रित है अर्थात ये सब अपने जैसे भाव करते हैं वैसे ही परिणमित होते हैं।

यह शरीर तो अचेतन है और मैं चेतन तत्त्व हूँ। चेतन और अचेतन दोनों की परिणति एक कैसे हो सकती है? यह शरीर तो पूरन–गलन स्वभाव को धारण करता है और मैं आकाश की भाँति विशाल, स्थिर और निर्मल तत्त्व हूँ।

हे जीव! पर पदार्थों का परिणमन न इष्ट है और न अनिष्ट है, अत: उसमें राग–द्वेष रूप झगड़ा करना व्यर्थ है क्योंकि यह करने से ज्ञान का नाश होता है और जीव कर्मों के बन्धनों में फँस जाता है। अत: यदि यह जीव इनको छोड़कर समता भाव में लीन हो जाये, तो इसे मुक्ति की प्राप्ति हो जाये।

अहो! यह विषय चाह रूपी भयंकर अग्नि अपने ज्ञानरूपी अमृतसागर में जमे बिना शांत नहीं हो सकती है। भाग्योदय से मैंने अब जिनवाणी कानों से सुनी है, अत: मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये समस्त विभाव नष्ट हो जाये।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि, हे सयाने चेतन! अब यदि ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी तूने आत्मकल्याण के कार्य में विलम्ब कर दिया तो तुझे बहुत पश्चाताप होगा, अत: अब शीघ्र ही इस संसार के भय से मुक्त हो।

10

अब हम अमर

अब हम अमर भये न मरेंगे,
या कारन मिथ्यात्व दियो तज, क्यों करि देह धरेंगे।।टेक।।

उपजे मरे काल तैं प्राणी, तातें काल हरेंगे।
राग–द्वेष जग बंध करत है, इनको नाश करेंगे।।१।।

देह विनाशी मैं अविनाशी, भेदज्ञान पकरेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे व्है निखरेंगे।।२।।

मरे अनन्त वार बिन समझे, अब सब दुःख विसरेंगे।
"द्यानत" निपट–निकट दो अक्षर, बिन सुमरे सुमरेंगे।।३।।

अपने आत्म स्वरूप का भान होने पर साधक जीव कहता है कि मैं तो अजर—अमर तत्त्व हूँ, मेरा कभी विनाश नहीं होता क्योंकि जिस मिथ्यात्व के कारण यह संसार मिलता है मैंने उस मिथ्यात्व को ही नष्ट कर दिया है तो अब पुनः इस देह का संयोग मुझे कैसे होगा?

काल द्रव्य के परिणमन के कारण प्राणी जन्म—मरण का चक्र करता है। अब हम अपने निज शुद्ध स्वरूप में ठहरकर इस काल की पराधीनता से अर्थात् जन्म—मरण से मुक्त हो जायेंगे तथा जो राग—द्वेष जगत में बंधन के कारण हैं, उनका हम नाश करेंगे।

यह देह तो नाशवान है और मैं अविनाशी तत्त्व हूँ —हम इस भेदज्ञान को समझकर ग्रहण करेंगे। यह देह तो नाशवान होने से नष्ट हो जायेगी और यह आतमा सदा काल रहने वाला है, अतः ऐसे भेदज्ञान में डूबकर हम निर्मल शुद्ध रूप में निखर जायेंगे।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि अभी तक हमने आत्म स्वरूप को समझे बिना अनन्त बार जन्म—मरण धारण किया अतः अब उन सब दुःखों को भूलकर केवल दो अक्षर 'सोहं' (मैं वह सिद्ध स्वरूप हूँ) का ही निरंतर सुमिरण करेंगे अर्थात् उस शाश्वत रूप की ही पहचान और प्रतीति करेंगे।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – ३

1 हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया...

हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया
हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया ।
तुम हो परम दयालु जगत गुरु,
मैं भव भव दुख पाया ।। हे जिन......

मोह महा दुठ घेर रहो मोहि,
भव कानन भटकाया ।
नित निज ज्ञान चरन निधि विसरयो,
तन धन कर अपनाया ।। हे जिन.....

निजानन्द अनुभव पियूष तज,
विषय हलाहल खाया ।
मेरी भूल मूल दुख दाई,
निमित्त मोह विधि थाया ।।हे जिन.....

सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिंग,
और न हेतु लखाया ।
शिव स्वरूप, शिव मगदर्शक तुम,
सुयश मुनीगण गाया ।। हे जिन.....

तुम हो सहज निमित्त जग हित के,
मो उर निश्चय भाया ।
भिन्न होहुं विधि तें सो कीजे,
'दौल' तुम्हें शिर नाया ।। हे जिन.....

हे जिनेन्द्र भगवान ! मैं आपकी शरण में आया हूँ क्योंकि आप परम दयालु और पूर्ण जगत के गुरू हैं तथा मैं अनंतकाल से इस संसार रूपी भवा टवी में दुःख पा रहा हूँ।

मुझे इस महा मोह रूपी दुष्ट ने अपने वश में करके कष्ट दिया है और इस संसार रूपी वन में भटकाया है। मैं सदा से ही अपने ज्ञान और चारित्र रूपी निज संपदा को भूलकर शरीर और धन रूपी जड़ संपदा को ही अपना मानता आया हूँ ।

हे प्रभो! मैंने अपनी आत्मानंद के अनुभव रूपी अमृत को त्यागकर विषय रूपी जहर का ही सेवन किया। मूल में तो मैंने मेरी स्वयं की भूल के कारण ही दुःख भोगा है, मोह कर्म तो निमित्त मात्र ही रहा है।

हे प्रभो! यह दुष्ट मोह आपके सम्मुख ही कमजोर पड़ता है, इसको नष्ट करने का मुझे और कोई कारण दिखाई नहीं देता। हे जिनेन्द्र देव! आप मोक्ष रूप परिणमित हो गये हैं और सभी को मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं इसलिये मुनिगण भी आपका यशगान करते हैं।

हे जिनदेव! आज मेरे ह्रदय में यह निश्चय हो गया है कि जगत के हित करने में आप ही सहज निमित्त हैं। अतः कवि दौलतराम जी आपको नमस्कार करते हुये भावना भाते है कि प्रभु आप ऐसा कार्य कीजिये कि जिस कारण से मैं कर्मों से सदा के लिये मुक्त हो जाऊँ।

2

जिनवाणी जान सुजान रे...

जिनवाणी जान सुजान रे, जिनवाणी जान सुजान रे ।।
लाग रही चिर तें विभावता, ताको कर अवसान रे ।।
जिनवाणी जान.....

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की कथनी को पहिचान रे ।
जाहि पिछाने स्व पर भेद सब जाने परत निदान रे ।।
जिनवाणी जान.....

पूरव जिन जानी, तिनही ने भानी संसृति वान रे ।
अब जाने अरु जानेंगे जे ते पावें शिवथान रे ।।
जिनवाणी जान....

कह तुषमाष मुनी शिवभूति, पायो केवलज्ञान रे ।
यों लखि 'दौलत' सतत् करो भवि, जिन वचनामृत पान रे ।।
जिनवाणी जान....

हे सज्जन जीव, ज्ञानी जीव ! जिनवाणी को जानो। उसका अभ्यास करो तथा अनादिकाल से जो विभाव भागों में बुद्धिलगी हुई है उसका अंत करो ।

हे जीव ! जिनवाणी में आयी हुये द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की कथनी को पहचानो क्योंकि इसके ज्ञान द्वारा ही अपने और पराये का समस्त भेद ज्ञात होता है।

पूर्व में जिन जीवों ने जिनवाणी को जाना अर्थात् जिनवाणी के उपदेश अनुसार श्रद्धान किया उनको ही आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई और अब जो जीव जिनवाणी को जानकर तद्रूप आचरण करेंगे तो वे भी निश्चित ही मोक्षपद को प्राप्त करेंगे।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि जैसे शिवभूति मुनिराज ने दाल और छिलके की भिन्नता के सदृश्य आत्मा और देह के भेद ज्ञान से भावभाषन करके केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया इसलिये हे प्रबुद्धजीवों जिन वचनों का निरन्तर रसपान करो जिससे तुम्हें भी आपार सुख अर्थात मोक्ष की प्राप्ति होगी ।

3 कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर...

कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर,
करि हैं भवोदधि पारा हो ।।टेक.।।

भोग उदास जोग जिन लीनों, छाँडि परिग्रह भारा हो।
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो ।।१।।
कबधौं...

कंचन काँच बराबर जिनके, निंदक बंदक सारा हो।
दुर्धर तप तपि सम्यक निज घर, मनवचतन कर धारा हो ।।२।।
कबधौं...

ग्रीष्म गिरि हिम सरिता तीरै, पावस तरुतल ठारा हो।
करुणाभीन चीन त्रसथावर, ईर्यापंथ समारा हो ।।३।।
कबधौं...

मार मार व्रत धार शील दृढ,मोह महामल टारा हो।
मास छास उपास वास वन, प्रासुक करत अहारा हो ।।४।।
कबधौं...

आरत रौद्र लेश नहिं जिनके,धर्म शुकल चित धारा हो।
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम,शुद्ध उपयोग विचारा हो ।।५।।
कबधौं...

आप तरहिं औरन को तारहिं,भवजलसिंधु अपारा हो।
'दौलत' ऐसे जैन–जतिन को,नित प्रति धोक हमारा हो ।।६।।
कबधौं.।

अहो ! संसार सागर से पार लगाने वाले दिगम्बर मुनिराजों के दर्शन मुझे कब होंगे ।

जिन मुनिराजों ने पंचेन्द्रिय के विषयभोगों से विरक्त होकर होकर योग धारण किया और समस्त प्रकार के परिग्रह के भार का त्याग कर दिया है। तथा जिन्होंने इन्द्रियों के दमन द्वारा अर्थात उनको वश में करके मदरूपी कषाय का वमन कर दिया है । तथा सभी विषय कषायों को नष्ट किया है - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जिनके लिये स्वर्ण और काँच अर्थात् अनुकूलता और प्रतिकूलता में कोई अन्तर नहीं है, निंदा करने वाले और प्रशंसा करने वाले दोनों समान हैं, जो मन-वचन-काय की एकाग्रता से कठिन सम्यक तप करके अपने निज घर अर्थात् आत्मा में लीन हो गये हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर, शीत ऋतु में नदी के किनारे और वर्षा के मौसम में वृक्षों के नीचे विराजमान होकर तप करते हैं। जो दयालु होकर त्रस और स्थावर जीवों को अच्छी तरह देखकर ईर्यापथ से समिति पूर्वक गमन करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो काम को पराजित करके दृढ़ शील व्रत का पालन करते हैं और जिन्होंने मोह रूपी मैल का प्रक्षाल किया है, जो छः-छः महीने तक उपवास करते हुये जंगल में रहते हैं और तद्दुपरांत प्रासुक आहार ही ग्रहण करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जिनके किंचित मात्र भी आर्त-रौद्रमय परिणाम नहीं है, तथा जिन्होंने धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को चित्त में धारण किया है, जो अपनी आत्मा के ध्यान में ही अर्न्तलीन हुये हैं और शुद्ध उपयोग में ही सदा विचरण करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो स्वयं तो संसार से पार होंगे ही और अन्य संसारीजनों को भी अपार भवसागर से पार कराने में निमित्त हैं, अतः दौलतरामजी यहां कहते हैं कि ऐसे जैन साधुओं को यतियों को निरन्तर हमारा नमस्कार हो।

4 काल अचानक ही ले जायेगा...

काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहेना क्या ।।
छिन हू तोकों नाहिं बचावै तो सुभटन का रखना क्या (रे) ।।
काल अचानक.....

रंच संवाद करन के काजे, नर्कन में दुःख भरना क्या।
कुलजन पथिकनि के हित काजै जगत जाल में परना क्या ।।
काल अचानक....

इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोक का शरणा क्या (रे) ।।
निश्चय हुआ जगत में मरना, कष्ट परै तब डरना क्या (रे) ।।
काल अचानक.....

अपना ध्यान करत खिर जावै, तौ कर्मनि का हरना क्या।
अब हित करि, आर्त तजि 'बुधजन', जनम जनम में जरना क्या ।।
काल अचानक....

हे जीव ! यह काल अर्थात् मृत्यु अचानक ही तुझे ले जायेगी इसलिये इस संसार में बेहोश होकर मत रहो।

हे प्राणी मृत्यु के आने पर ! जो एक क्षण भी तुझे नहीं बचा सकते ऐसे योद्धाओं को अपने पास क्यों रखना ? अर्थात् उनको रखने से क्या फायदा ।

हे जीव ! लौकिक के जरा से वाद-विवाद के कारण नरक गति के दुःखों को क्यों सहते हो और परिवार - कुटुम्बीजनों के हित के लिये स्वयं संसार जाल में फंसना उचित नहीं है।

हे चेतन! जब इन्द्र जैसे बलशाली व्यक्ति भी तुझे नहीं बचा सकते तो जगत के अन्य लोगों से तो शरण की क्या आशा रखना ? इस जगत में मरना ही है तो कष्ट के आने पर या रोगादि-मृत्यु आदि आने पर उनसे घबराने से क्या फायदा ।

हे जीव ! जो कर्म निज आत्म ध्यान से तुरंत ही नष्ट हो जाते हैं तो ऐसे कर्मों की नष्ट करने की चिन्ता क्यो करना । बुधजन कवि तो कहते है कि आर्त-रौद्र, राग-द्वेष के परिणामों का त्यागकर अपना हित करो तो जन्म-जन्म के दुःखों को सहन नहीं करना पड़ेगा।

5 साधो ! छांडो विषय विकारी...

साधो ! छांडो विषय विकारी। जातैं तोहि महा दुःखकारी...
जो जैन धर्म को ध्यावै, सो आतमीक सुख पावै ।। साधो.।।

गज फरस विषैं दुःख पाया, रस मीन गंध अलि गाया।
लखि दीप शलभ हित कीना, मृग नाद सुनत जिय दीना ।। साधो.।१।

ये एक एक दुःखदाई, तू पंच रमत है भाई।
यह कौनें, सीख बताई, तुमरे मन कैसें आई ।। साधो.।२।

इनमांही लोभ अधिकाई, यह लोभ कुगति को भाई।
सो कुगति मांही दुख भारी, तू त्याग विषय मतिधारी ।। साधो.।३।

ये सेवत सुख से लागैं, फिर अन्त प्राण को त्यागैं।
तातैं ये विषफल कहिये, तिन को कैसे कर गहिये ।। साधो.।४।

तब लौं विषया रस भावे, जब लौं अनुभव नहिं आवै।
जिन अमृत पान ना कीना, तिन और रसन चित दीना ।। साधो.।५।

अब बहुत कहां लौं कहिए, कारज कहि चुप है रहिये।
ये लाख बात की एक, मत गहो विषय की टेक ।। साधो.।६।

जो तजै विषय की आशा, 'द्यानत' पावै शिव वासा।
यह सतगुरु सीख बताई, काहू बिरेले जिय आई ।। साधो.।७।

हे सज्जन पुरुष! जिन विकारी विषयों के सेवन से तुमको महादु:ख प्राप्त होता है उनका त्याग करो। जो जैनधर्म को ध्याता है अर्थात् उसके मार्ग अनुसरण करता है वह आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

जैसे-हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय लोभ में गडडे में गिरकर, मछली रसना इन्द्रिय के विषय लोभ में कांटे में फंसकर, भंवरा सुगन्ध के लोभ में फूल में बंद होकर, पतंगा चक्षु इन्द्रिय के विषय के लोभ में अग्नि में जलकर और मृग कर्ण इन्द्रिय के विषय के लोभ में शिकारी के चंगुल में फंसकर अपने प्राण गंवा देते हैं ।

ये तो एक-एक इन्द्रिय के लोभ के वश अपने प्राण गंवाते हैं और तुम तो पाँचों इन्द्रियों के विषयों में रमण कर रहे हो - हे जीव ! यह तुम्हें किसने सिखाया और इनको भोगने की बुद्धि तुमने कहाँ से प्राप्त की ? अत: इन विषय विकार का त्याग करो।

पाँच इन्द्रियों के विषयों में लोभ की अधिकता है और लोभ की वासना ही दुर्गति का मूल कारण है और इन गतियों में महादु:ख सहन करने पड़ते हैं इसलिये हे ज्ञानीजीव ! तुम इनका त्याग करो।

ये पाँच इन्द्रियां सेवन के समय तो सुख रूप प्रतीत होती है परन्तु इनके सेवन से अंत में अपनी ही हानि है इसलिये इन्हें विषफल ही कहा है । अत: हे जीव ! इन विषफलों का तुम कैसे सेवन कर सकते हो अर्थात् इन विषय विकार का त्याग ही श्रेष्ठ है ।

तथा जब तक इन विषय कषाय का रस आता है तब तक आत्मा का अनुभव भी नहीं हो सकता । और जिनने अपनी आत्मा के अमृत रस का पान नहीं किया है उनका चित्त सदैव विषय-कषायों के रस में ही रमता हैं।

अब इनकी बात कितनी कहें, इन विषयों का फल कहकर मौन हो जाना चाहिये और विषय - भोगों की आशा नहीं करना चाहिये - यही लाख बात की एक बात अर्थात् सार है।

द्यानतरायजी कहते हैं कि जो जीव विषयों की परवषता का त्याग करता है उसे मोक्ष का सुख प्राप्त होता है। दिगम्बर मुनिराजों ने भी यही शिक्षा दी है जो विरले जीवों को ही सुहाती है ।

6

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान...

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान,

नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके, करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

देखन जाननहार आप लखि, देहादिक पर मान ।।

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

मोह राग रुष अहित जान तजि, बंधहु विधि दुःखदान ।।

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

निज स्वरूप में मगन होयकर, लगन विषय दो भान ।।

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

'भागचन्द' साधक है साधो, साध्य स्वपद अमलान ।।

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

हे भाई! तुमने दुलर्भ मनुष्य भव, उत्तम कुल और उत्तम क्षेत्र को प्राप्त किया है इसलिये आत्महित करने में प्रयोजन भूत जीवादि सात तत्वों के सम्यक् अर्थ को पहचानो और उसकी ही श्रद्धा करो।

हे भाई ! स्वयं को जानने-देखने वाला अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो और शरीर आदि को परद्रव्य मानो तथा मोह-राग-द्वेष आदि आश्रव परिणामों को अहितकारी जानकर इनका त्याग करो, क्योंकि ये कर्म बंध के कारण होने से बहुत दुःख प्रदान करने वाले हैं।

हे जीव! अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर विषयों की रुचि का त्याग करो। भागचन्द कवि कहते हैं कि - वास्तविक साधक अर्थात् साधु वही है जो अपने निर्मल निज आत्मा को ही साधता है अतः हे जीव! सर्व दुःखों से मुक्ति के लिये तत्वों का यर्थात् श्रद्धान-ज्ञान करो ।

7

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो...

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो, रूप न जानै रे।।टेक।।

अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।।टेक।।

तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर इनहिं वियोग योग में, यौं ही सुख दुःख मानै रे।।१।।टेक।।

चाह न पाये, पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे।।२।।टेक।।

नर भव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुर बखानै रे।।३।।टेक।।

हे प्राणी! तुम परपदार्थों में ही रमण कर रहे हो और अपना ज्ञानानंद स्वरूप नहीं जानते। तुम तो अविचल, चैतन्यमूर्ति और अमूर्तिक तत्व हो तथा जिसके निश्चय करने से पूर्ण सुख प्राप्त होता है।

हे चेतन! शरीर, धन, भाई, पिता, पुत्र, माता आदि ये सब तेरे से पर हैं और तुम इनको अपना समझ कर इनके संयोग वियोग में अर्थात् मिलने पर सुखी और वियोग होने पर दुखी हो रहे हो।

हे चेतन! ये इन्द्रिय विषय इच्छा करने पर प्राप्त नहीं होते हैं और प्राप्त होते भी हैं तो ये तृष्णा को ही बढ़ाते हैं, तथा इनके सेवन के कारण अपना ज्ञान भी हीन होता जाता है और ये घोर विपत्ति को उत्पन्न करने वाले कर्मबन्ध के कारण हैं । ऐसा जानकर भी तू इनको सुख का भण्डार समझता है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे बुद्धिमान चेतन! अब तो तुझे मनुष्य जन्म और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ है इसलिये अब तू अपना हित कर और श्रीगुरु जिसकी महिमा गाते हैं उस आतमज्ञान रूपी अमृत रस का पान कर।

8

घट में परमातम ध्याइये हो...

घट में परमातम ध्याइये हो, परम धरम धनहेत....
ममता बुद्धि निवारिये हो, टारिये भरम निकेत ।। घट में. ।।

प्रथमहिं अशुचि निहारिये हो, सात धातु यह देह।
काल अनन्त सहे दुःख जानैं, ताको तजो अब नेह ।।१।।
घट में....

ज्ञानावरणादिक जमरूपी, निजतैं भिन्न निहार।
रागादिक परिनति लख न्यारी, न्यारो सुबुध विचार ।।२।।
घट में....

तहाँ शुद्ध आतम निरविकल्प, ह्वै करि तिसको ध्यान।
अलप कालमें घाति नसत हैं, उपजत केवलज्ञान ।।३।।
घट में....

चार अघाति नाशि शिव पहुँचे, विलसत सुख जु अनन्त।
सम्यक दरसनकी यह महिमा,'द्यानत' लह भव अन्त ।।४।।
घट में....

हे जीव! परम धर्म अर्थात पूर्ण सुख रूपी धन को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा में विराजमान परमात्म स्वरूप का ध्यान करो। पर द्रव्यों के प्रति ममत्व परिणाम को दूर हटाकर इस अनादि के भ्रम को टालो ।

जिस देह में अपनेपन के कारण अनन्त काल तक दुःख सहन किये सर्वप्रथम सप्त कुधातु में अर्थात् मल-मूत्र आदि का भंडार उस देह को अशुचि जानो और इसके प्रति मोह का त्याग करो।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्म यम के समान हैं; इनसे अपने को भिन्न देखो और रागादि परिणामों को अपनी आत्मा से भिन्न अनुभव करो - यही ज्ञानियों का विचार है।

फिर निर्विकल्प शुद्ध आत्मा जो कि तेरा स्वरूप है उसका ध्यान करो जिसके ध्यान से अल्प काल में चार घाति कर्मों का नाश होता है और केवलज्ञान प्रगट होता है।

फिर चार अघाति कर्मों का नाश कर जीव मोक्ष पहुँच जाता है जहाँ अनन्त काल के लिये अनंत सुख का भोग ही होता है। द्यानतरायजी कहते हैं कि यह सब सम्यक्दर्शन की ही महिमा है जिससे संसार के दुःखों का अन्त होता है।

9

हमको कछू भय ना रे...

हमको कछू भय ना रे, जान लियो संसार ।। टेक।।

जो निगोदमें सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार।
निश्चय भेद कछू भी नाहीं, भेद गिने संसार ।।१।।
हमको कछू भय...

परवश है आपा विसारिके, राग दोषकों धार।
जीवत मरत अनादि कालतैं, यौंही है उरझार ।।२।।
हमको कछू भय...

जाकरि जैसे जाहि समयमें, जो होवत जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार ।।३।।
हमको कछू भय...

अग्नि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार।
सो पुद्गल रूपी मैं बुधजन, सबकौ जाननहार ।।४।।
हमको कछू भय...

कवि कहते हैं कि मुझे अब किसी भी प्रकार का डर या भय नहीं है क्योंकि अब मैंने संसार के स्वरूप को जान लिया है।

जैसा मैं निगोद की अवस्था में था वैसा ही अभी हूँ तथा वैसा ही मोक्ष में रहने वाला हूँ । निश्चय दृष्टि से देखें तो निगोद और मोक्ष की अवस्था में कोई अन्तर नहीं है, और जो इनमें भेद गिनते हैं वह सब व्यवहार दृष्टि वाले संसारी हैं।

हे जीव ! तू पर द्रव्यों के वशीभूत होकर आत्मा को भूलकर राग-द्वेष के परिणाम ही करता आ रहा है । जिसके कारण तू अनादि काल से जन्म - मरण के महादु:ख पीड़ा को भोग रहा है।

जिस द्रव्य का जिस विधि से, जिस प्रकार से, जिस समय में जो होना सुनिश्चित है, वह होकर ही रहेगा और इसमें कुछ भी परिवर्तन संभव नहीं है - ऐसा मुझे आज निर्णय हो चुका है ।

बुधजन कवि कहते हैं कि जैसे अग्नि का स्वरूप जलाने का और पानी का स्वरूप डुबोने का है उसी प्रकार इस पुदगल शरीर का प्रभाव बिछुड़ने और मिलने का है और मैं तो इन सबको जानने वाला आतमराम हूँ।

10

जिया तुम चालो अपने देश...

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ थान
जिया तुम चालो अपने देश ।।

लख चौरासी में बहु भटके लह्यो न सुख को लेश ।।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

मिथ्या रूप धरे बहु तेरे, भटके बहुत विदेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

विषयादिक से बहु दुःख पाये, भुगते बहुत कलेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

भयो तिर्यंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

'दौलतराम' तोड़ जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

यहां कवि दौलतरामजी इस जीव को संबोधित कर रहे हैं कि हे जीव! तुम अपने स्वदेश चलो। तुम्हारा अपना शुभ देश अर्थात् शुभ स्थान तो शिवपुर (मोक्ष) ही है ।

यहाँ संसार में तो तुम चौरासी लाख योनियों में बहुत भटक चुके हो किन्तु तुम्हें लेश मात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई है, अतः अब तो तुम अपने स्वदेश अर्थात् शिवपुर चलो।

हे जीव! तुमने अनादिकाल से अनेक प्रकार के मिथ्यारूपों को धारण करके अन्य अनेक यौनियों में बहुत भ्रमण किया है तथा जहाँ तुमने निमित्त से अनन्त दुःख ही उठाये हैं अतः अब तुम अपने उत्तम देश शिवपुर को चलो।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि हे जीव! तुम इस संसार में अनेक प्रकार के वेश बना-बनाकर तिर्यंच, नारकी, मनुष्य और देव चर्तुगतियों में सब कुछ बन चुके हो, अतः अब तो इस असार संसार से सम्बन्ध तोड़ो और सद्गुरु के उपदेश को सुनो-समझो। हे जीव ! अब तो तुम अपने देश शिवपुर को चलो ।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – ४

1

प्रभु थारी आज महिमा जानी...

प्रभु थारी आज महिमा जानी ।।टेक.।।

अब लो मोह महा मद पिय मैं, तुमरी सुधि विसरानी।
भाग जगे तुम शांति छवी लखि, जडता नींद बिलानी ।१। प्रभु.

जगविजयी दुःखदाय रागरुष, तुम तिनकी थिति भानी।
शांतिसुधा सागर गुन आगर, परम विराग विज्ञानी ।२। प्रभु.

समवसरन अतिशय कमलाजुत, पै निर्ग्रन्थ निदानी।
क्रोध बिना दुठ मोह विदारक, त्रिभुवन पूज्य अमानी ।३। प्रभु.

एक स्वरूप सकल ज्ञेयाकृत, जग–उदास जग–ज्ञानी।
शत्रु मित्र सब में तुम सम हो, जो दुःख सुख फल यानी ।४। प्रभु.

परम ब्रह्मचारी है प्यारी, तुम हेरी शिवरानी।
है कृतकृत्य तदपि तुम शिवमग, उपदेशक अगवानी ।५। प्रभु.

भई कृपा तुमरी तुममें तैं, भक्ति सु मुक्ति निशानी।
है दयाल अब देहु 'दौल' को, जो तुमने कृति ठानी ।६। प्रभु.

हे प्रभो ! मैं आज आपकी महिमा को जान गया हूँ। अब तक मोहरूपी महामद का पान करके मैं आपके स्वरूप को भूला हुआ था, किन्तु आज मेरे भाग्य जगे हैं अर्थात् मेरा ऐसा पुण्योदय आया है जो कि मुझे आपकी शान्त मुद्रा के दर्शन हुये और जिससे मेरी अनादिकालीन जड़ता रूपी निद्रा दूर हो गई है।

हे प्रभो! आपने सारे संसार को जीत लेने वाले और महादुःख देने वाले राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है अतः आप शान्तिरूपी अमृत के सागर हैं, गुणों के भण्डार हैं, परम वीतराग विज्ञान स्वरूप हैं।

हे प्रभो! यद्यपि समवशरण आदि अतिशय लक्ष्मी आप के संयोग में हैं, तथापि आप पूर्णतः निग्रन्थ अर्थात् अपरिग्रही हैं। आप क्रोध से रहित हैं, दुष्ट मोह के विनाशक हैं, और मान से रहित तीनों लोकों द्वारा पूज्य हैं ।

हे प्रभो! आप केवलज्ञान में सकल ज्ञेय पदार्थों को जानते हुये भी एक स्वरूप में ही रहने वाले हैं, जगत से उदासीन रहकर भी सारे जगत के ज्ञाता हैं तथा दुःख-सुख के पल में निमित्तभूत ऐसे शत्रु-मित्र आदि को समान दृष्टि से देखने वाले हैं।

हे प्रभो! आप परम ब्रमचारी हैं, फिर भी आपने अत्यन्त प्रिय मुक्तिरानी को खोजकर प्राप्त किया है तथा आप कृतकृत्य हो गये हैं, फिर भी जगत के जीवों के लिये मोक्षमार्ग के अग्रणी उपदेशक हैं।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे प्रभो! अब आपकी कृपा से मुझमें आपके प्रति भक्ति उत्पन्न हुई है जो कि मोक्ष का उत्तम दशा प्रदान कीजिये। हे प्रभो! आप दयालु होकर मुझे भी वही उत्तम दशा दीजिये, जो आपने अपने में प्रकट की है।

2

और सबै जगद्वन्द मिटावो...

और सबै जगद्वन्द मिटावो,
लो लावो जिन आगम–ओरी ।।टेक।।

है असार जगद्वन्द बन्धकर,
यह कछु गरज न सारत तोरी।
कमला चपला, यौवन सुरधनु,
स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ।।१।।टेक।।

विषय कषाय दु:खद दोनों ये,
इनतैं तोर नेह की डोरी।
परद्रव्यनको तू अपनावत,
क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी ।।२।।टेक।।

बीत जाय सागरथिति सुरकी,
नरपरजायतनी अति थोरी।
अवसर पाय 'दौल' अब चूको,
फिर न मिलै मणि सागर बोरी ।।३।।टेक।।

हे जीव ! जगत के अन्य सब दन्द-फन्द को छोड़ो और अपनी ध्यान रूपी लौ को मात्र जिनागम की ओर अग्रसर करो ।

क्योंकि जगत के सारे द्वन्द-फन्द असार हैं और बन्ध के कारण हैं। उनसेतुम्हारा कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है। लक्ष्मी चंचल है, यौवन इन्द्रधनुष के समान (सुन्दर किन्तु क्षणभंगुर) है और कुटुम्ब-परिवार के लोग पथ के सहयात्री के समान हैं। तुम इन सबसे व्यर्थ मोह क्यों रखते हो।

हे भाई! विषय और कषाय - ये दोनों ही महादुःखदायी है। तुम इनसे स्नेह सम्बन्ध तोड़ दो। जो तुम परद्रव्यों को अपना बनाने का प्रयास करते हो, वह व्यर्थ अज्ञानता ही है अतः तुम ऐसी सरल (खोटी है) बुद्धि को क्यों नहीं छोड़ते हो ।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे भाई! स्वर्ग के देवों की सागरोपम जैसी लम्बी आयु भी एक दिन व्यतीत हो जाती है, तो तेरी यह मनुष्य पर्याय का समय तो बहुत ही कम है, अतः यदि तुम अब भी ऐसा अमूल्य अवसर पाकर भी चूक गये तो समझ लो कि समुद्र में फेंकें हुये चिंतामणि रत्न के समान यह अवसर पुनः मिलनेवाला नहीं है।

3

ऐसे जैनी मुनि महाराज...

ऐसे जैनी मुनि महाराज सदा उर मो बसो। टेक॥

जिन समस्त पर द्रव्यनि माहीं, अहं बुद्धि तजि दीनी।
गुण अनन्त ज्ञानादिक मम, पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी॥
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

जे निज बुद्धि पूर्व रागादिक, सकल विभाव निवारैं।
पुनि अबुद्धिपूर्वक नाशन को, अपनी शक्ति सम्हारैं॥
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

कर्म शुभाशुभ बंध उदय में, हर्ष विषाद न राखैं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, भाव सुधारस चाखैं॥
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

पर की इच्छा तजि निज बल सजि, पूरब कर्म खिरावैं।
सकल कर्म तें भिन्न अवस्था, सुखमय लखि चित चावैं॥
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

उदासीन शुद्धोपयोग रत, सबके दृष्टा ज्ञाता।
बाहिज रूप नग्न समता सर, 'भागचन्द' सुख दाता॥
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

ऐसे जैन मुनि अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन मुनिराजों ने समस्त परद्रव्यों में अपनेपन की बुद्धि को छोड़ दिया है और अपने ज्ञान आदि अनन्त गुणों को पहचानकर अपनी आत्मा की अनुभूति की है - ऐसे दिगम्बर मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन्होंने बुद्धिपूर्वक होने वाले रागादि समस्त विकारी भावों का तो निवारण कर दिया है और अबुद्धिपूर्वक होने वाले विकारी परिणामों के नाश के लिये उद्यमवन्त हैं - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो शुभ-अशुभ कर्म के बंध और उदय में हर्ष व शोक का परिणाम नहीं करते और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के तप द्वारा निज भावों के अमृतरस का भोग करते हैं - ऐसे तपस्वी मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो अपनी शक्ति के बल से परद्रव्यों की इच्छा को त्यागकर पूर्व में उपार्जित कर्मों को नष्ट करते हैं और समस्त कर्मों से भिन्न पूर्ण सुखमय अवस्था को ही प्राप्त करना चाहते हैं - ऐसे वीतरागी संत सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो बाह्य जगत से उदासीन होकर शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं और समस्त विश्व के ज्ञाता-दृष्टा हैं, तथा बाहर में तो नग्न हैं और अंतर में समता रस के धनी हैं, तथा जो सभी जीवों को आत्मिक सुख प्रदान करने वाले हैं उन मुनिराजों के लिये कवि भागचन्दजी कहते हैं कि - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

4

जे दिन तुम, विवेक बिन खोये...

जे दिन तुम, विवेक बिन खोये ।।टेक।।

मोह वारुणी पी अनादि तें, पर पद में चिर सोये ।
सुख करंड चित् पिण्ड आप पद, गुण अनन्त नहिं जोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

होय बहिर्मुख ठानि राग रुष, कर्म बीज बहु बोये ।
तसु फल सुख दुःख सामिग्री लखि, चित्त में हरसे रोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

धवल ध्यान शुचि सलिल पूर तें, आस्रव मल नहिं धोये ।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

अब निज में निज जान, नियत तहाँ, निज परिणाम समोये ।
यह शिव मारग, सम रस सागर, 'भागचन्द' हित तो ये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

हे जीव! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया है।
हे चेतन! अनादि काल से मोह की मदिरा का पान करके तुम बाहर के पदों में अर्थात् पर स्थान में सो रहे हो और तुमने सुख के सागर, चैतन्य पिंड ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा जो कि स्वास्थान अर्थात् अपना पद है उसके अनन्त गुणों को नहीं जाना। और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे जीव! तुमने बहिर्मुख होकर रागादि विकारी भाव के कर्ता बनकर कर्म बंध के बीज ही बोये है और इन कर्मों के फल में मिलने वाली सुख-दुख की सामग्री को देखकर मन में सुखी-दुखी होते रहे हो । हे जीव ! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे चेतन! तुमने अपने निर्मल ध्यान रूपी जल से आस्रव रूपी मलिन भावों का परिहार नहीं किया, न ही परद्रव्य के संग्रह करने की इच्छा को वश में किया और अनेक प्रकार के परिग्रह को भी एकत्रित करते रहे और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

अतः कविवर भागचन्दजी यहां कहते हैं कि - हे चेतन! अब अपने में अपने स्वरूप को जानों वहीं पर रमण करो और अपनी परिणामों की संभाल करो - क्योंकि यह मोक्षमार्ग ही समता रस का समुद्र है और इसमें ही तुम्हारा हित है । अतः अब इन क्रियाओं को त्यागो और बिना विवेक के जो तुमने समय गंवाया उसकी संभाल करो ।

5

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै...

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै,
जाको जिनवानी न सुहावै ।।टेक.।।

वीतराग से देव छोडकर, भैरव यक्ष मनावै।
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रायनि वावै ।।१।। ऐसा।।

रुचै न गुरु निर्ग्रन्थ भेष बहु, –परिग्रही गुरु भावै।
परधन परतियको अभिलाषै, अशन अशोधित खावै ।२। ऐसा।।

पर की विभव देख ह्वै सोगी, परदुःख हरख लहावै।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ।।३।। ऐसा।।

ज्यों गृह में संचै बहु अघ त्यों, वनहू में उपजावै।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ।।४।। ऐसा।।

आरम्भ तज शठ यंत्र मंत्र करि, जनपै पूज्य मनावै।
धाम वाम तज दासी राखै, बाहिर मढ़ी बनावै ।।५।। ऐसा।।

नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि में ललचावै।
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, ओरन को भटकावै ।६। ऐसा।।

जिस जीव को जिनवाणी अच्छी नहीं लगती है, तथा दुर्लभ मनुष्य पर्याय मिलने पर भी मोह महामद पीने वाला जीव अधोगति में क्यों नहीं जायेगा ।

जो श्रेठ वीतरागी देव को छोड़कर भैरव, यक्ष आदि कुदेवों की पूजा करता है, तथा दया-करूणा की कल्पबेल को छोड़कर हिंसा के इन्द्रायण (बट) बीज को बोता है।

जिसे निर्ग्रन्थ गुरु तो अच्छे नहीं लगते अपितु अनेक भेष धारण करने वाले परिग्रही गुरु ही अच्छे भाषित होते हैं, वह जो सदा परधन व परस्त्री की अभिलाषा करता है, तथा बिना शोधा हुआ अर्थात् अशुद्ध भोजन ही करता है।

दूसरों के वैभव को अर्थात् पराई सम्पत्ति को देखकर दुःखी होता है, वह दूसरों के दुःख को देखकर प्रसन्न होता है, धर्म कार्य के लिये जरा भी धन खर्च नहीं करता किन्तु विषय भोगों के लिये घूमने फिरने आदि में लाखों रुपये पानी की तरह बहा देता है।

वन में अर्थात् एकांत स्थान में जाकर भी घर की भांति बहुत पाप एकत्रित करता है, वस्त्र का त्यागकर दिगम्बर कहलाता है परन्तु रागद्वेष होने से अपने शरीर को बाघ आदि की खाल से ढांकता है।

आरम्भ का त्यागी होकर दुष्ट भाग से तंत्र-मंत्र करता है,और अज्ञानी लोगों से अपने को पुजवाता है । नगर के घर संसार का तो त्याग करता है मगर वन में कुटिया बनवाता है एवं दासी रखता है।

यति, तपस्वी जैसे ऊँचे नाम को धारण करते हुये जिसका मन सदैव विषयों में ललचाता है। ऐसे तीव्र मोही जीव के लिये कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि वह स्वयं भी अनन्त जन्मों तक संसार में भटकता है और दूसरों को भी भटकाता है। अतः ऐसा जीव निश्चित ही अधोगति में जायेगा ।

6

छाँड़त क्यों नहिं रे...

छाँडत क्यों नहि रे, हे नर रीति अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी।।

विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुःख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं, घृत हेतु-विलोवत पानी।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

तन धन सदन स्वजन जन तुझसों, ये पर्याय विरानी।
इन परिणमन विनश उपजन सों, तैं दुःख सुखकर मानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

इस अज्ञान तें चिर दुःख पाये, तिनकी अकथ कहानी।
ताको तज, दृग ज्ञान चरण भज, निज परिणति शिवदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

यह दुर्लभ नर भव सुसंग लहि, तत्त्व लखावन वाणी।
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

हे नर ! तू अपनी अज्ञान दशा को क्यों नहीं छोड़ देता ? सदगुरू तुम्हें बार-बार शिक्षा देकर सचेत कर रहे हैं, किन्तु तू आनाकानी (बहाने) कर रहा है।

हे जीव ! तू न तो विषयों का त्याग करता है, और न ही सम्यग्ज्ञान एवं संयम की उपासना करता है और न ही दुःख-सुख के सच्चे स्वरूप को जानता है। यही कारण है कि तू सुख तो चाहता है किन्तु उस की प्राप्ति नहीं कर पाता है; उसी प्रकार जिस प्रकार कोई व्यक्ति घी प्राप्त करने के लिये पानी को बिलोने रूपी कार्य तो करता परंतु पानी के बिलोने से घी कैसे प्राप्त होगा ।

हे मनुष्य! शरीर, धन, मकान, परिवारजन, मित्र आदि तो तुझसे अत्यंत भिन्न पर्याय हैं और तूने व्यर्थ ही उनके नष्ट और उत्पन्न होने को अपने दुःख-सुख का कारण मान रखा है

और इसी अज्ञान के कारण तूने अनादि से इतने दुःख प्राप्त किये हैं कि उनकी कथा कही नहीं जा सकती। अतः अब तू इस अज्ञान कार्य को त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कर - यही आत्मपरिणति तुझे मुक्ति को प्रदान करने वाली है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे नर! अब तो तूने इस दुर्लभ मनुष्य भव को, सत्संगति को और तत्व को दर्शाने वाली जिनवाणी को भी प्राप्त कर लिया है, अतः अब तो तू पर में ममता करना छोड़ और सुख को देने वाली समता को धारण करके सच्चा सुख प्राप्त कर।

7

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला...

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला, संग साथी नहीं कोई तेरा।
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला॥

अपना सुख दुःख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भये, सब बिछुर जात हैं, विघट जात ज्यों मेला॥

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
रक्षक कोई न पूरन है, जब आयु अन्त की बेला।

फूटत पार रुकत नहिं जैसे, दुद्धर जल को ठेला॥
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

तन धन जोबन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजाल को खेला।
'भागचन्द' इमि लखकर भाई, हो सतगुरु को चेला॥

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

हे जीव! वास्तव में अनेक प्रकार के संयोग में भी तू सदा अकेला ही भ्रमण करने वाला है, तेरा साथी कोई नहीं है। तू एकत्व को लिये हुये अकेला ही है ।

हे जीव! प्रत्येक प्राणी को अपना सुख-दुःख स्वयं अकेले ही भोगना पड़ता है इस कार्य में कोई कुटुम्बीजन साथ नहीं दे देते क्योकिं ये सब तो स्वार्थ के सगे है। जैसे मेला समाप्त होने पर सभी यात्री अलग-अलग स्थान पर चले जाते हैं। उसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध हो जाने के बाद सभी कुटुम्बीजन भी साथ छोड़के चले जाते हैं ।

हे प्राणी! जिस प्रकार बांध के फूट जाने पर जल के तेज प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार जब आयु की समाप्ति का समय आता है तब कोई भी तेरी रक्षा नहीं कर सकता और न कोई तेरी आयु बढ़ाने में समर्थ हो सकता है ।

जिस प्रकार इन्दजाल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार शरीर, धन, यौवन आदि सब नाश को प्राप्त होते हैं इसलिये कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि - हे भाई! यह देखकर तू सच्चे गुरू अर्थात् दिगम्बर मुनिराज का शिष्यत्व स्वीकार कर और उनके वचनों को जीवन में धारण कर तभी तेरा कल्याण होगा ।

8

निर्ग्रन्थों का मार्ग...

निर्ग्रंथों का मार्ग हमको प्राणों से भी प्यारा है ...
दिगम्बर वेश न्यारा है...निर्ग्रन्थों का मार्ग ....||

शुद्धात्मा में ही, जब लीन होने को, किसी का मन मचलता है,
तीन कषायों का, जब राग परिणति से, सहज ही टलता है,
वस्त्र का धागा...वस्त्र का धागा नहीं फिर उसने तन पर धारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रन्थों का मार्ग...

पंच इंद्रिय का विस्तार नहीं जिसमें, वह देह ही परिग्रह है,
तन में नहीं तन्मय, है दृष्टि में चिन्मय, शुद्धात्मा ही गृह है,
पर्यायों से पार... पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव का सदा सहारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है...निर्ग्रन्थों का मार्ग....

मूलगुण पालन, जिनका सहज जीवन,निरन्तर स्व-संवेदन,
एक ध्रुव सामान्य में ही सदा रमते, रत्नत्रय आभूषण,
निर्विकल्प अनुभव...निर्विकल्प अनुभव से ही जिनने निज को श्रृंगारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा... निर्ग्रन्थों का मार्ग...||

आनंद के झरने, झरते प्रदेशों से,ध्यान जब धरते है,
मोह रिपु क्षण में, तब भस्म हो जाता, श्रेणी जब चढते हैं,
अंतर्मुहूर्त में.अंतर्मुहुर्त में ही जिनने अनन्त चतुष्टय धारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रन्थों का मार्ग.... ||

हमें सकल परिग्रह त्यागी दिगम्बर मुनीश्वरों का मार्ग अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है और उनकी दिगम्बर मुद्रा भी अत्यंत प्यारी है।

जब किसी साधक जीव का मन शुद्धात्मा में लीन होने का पुरूषार्थ करता है तब उसकी परिणति से अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्या- नावरण, प्रत्याख्यानावरण इन तीन कषाय चौकड़ी का अभाव सहज हो जाता है और अंतरंग में शुद्धोपयोग की अति निर्मल दशा होने पर बहिरंग में समस्त प्रकार के परिग्रह का त्याग हो जाता है अर्थात् परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ दशा हो जाती है।

ऐसे शुद्धापयोगी मुनिराज का उपयोग पंच इन्द्रियों के विषयों नहीं जाता, उनके लिये परिग्रह के रूप में मात्र देह ही है। शरीर के साथ होने पर भी वे मुनिराज शरीर में एकत्व नहीं करते, उनके लिये एकमात्र चितस्वरूपी आत्मा ही उपादेय है और वे अपनी आत्मा में ही निवास करते हैं। ऐसे मुनिराजों के लिये पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव आत्मा ही शरणभूत है।

वीतरागी मुनिश्वरों के जीवन में मूलगुणों का पालन सहज ही होता है उसके लिये उन्हें विकल्प नहीं करना पड़ता, वे निरन्तर आत्मा की अनुभूति करते हैं, वे सदा धुव्र आत्मा में ही रमण करते हैं, उनके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये रत्नत्रय ही श्रृंगार है और उन्होंने समस्त विकल्पों से परे आत्म अनुभव से ही अपना श्रृंगार किया है।

वीतरागी मुनिराज जब अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं तो उनके आत्म प्रदेशों से निरन्तर आनन्द का झरना झरता है अर्थात् वे अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर भोग करते हैं, शुद्धात्मा की एकाग्रता बढ़ने से क्षपक श्रेणी आरोहण करते हैं जिससे उनके चारित्र मोहनीय का सम्पूर्णतया नाश होता है और मात्र अंतमुहूर्त में ही वे अरहंत पद को प्राप्त करते हैं और उनके अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है।

9

तोहि समझायो सौ सौ बार

तोहि समझायो सौ सौ बार,
जिया तोहि समझायो सौ सौ बार।
देख सुगुरु की परहित में रति, हित उपदेश सुनायो।
तोहि समझायो.......

विषय भुजंग सेय दुःख पायो, पुनि तिन सों लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यो पर पद में, मद रत ज्यों बौरायो॥
तोहि समझायो.......

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम, चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो॥
तोहि समझायो.......

अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिनवृष बिना गमायो।
ते विलखें मणि डाल उदधि में, 'दौलत' सो पछितायो॥
तोहि समझायो.......

अनेक बार समझाने पर भी यह मोही जीव आत्म हित में नहीं लगता इसलिये कविवर कहते हैं कि हे जीव! अब तू श्रीगुरू की तरफ देख तो सही, परहित अर्थात् दूसरों के कल्याण की भावना होने के कारण श्रीगुरु तुझे समझाते हुये तेरे हित की बात कह रहें है।

तूने विषयरूपी सर्प के विष का सेवन करके बहुत दुःख पाया है, लेकिन फिर भी तू उन्हीं से प्रीति करता है। तू शराब के नशे में मस्त पागल व्यक्ति की भांति अपने वास्तविक पद (स्वरूप) को भूलकर परपद में ही लीन हो रहा है, ।

हे जीव! यह शरीर, धन, मित्र आदि तेरे नहीं हैं, तू उनसे व्यर्थ ही स्नेह करता है। तू ऐसे मिथ्याभ्रम को छोड़कर समतारूपी अमृत रस का पान क्यों नहीं करता जो रस मुनिराजों को सदा सुहाता है।

कविवर दौलतरामजी कहते है कि यह मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ है। और जो जीव इस मनुष्य भव को जिनधर्म की आराधना के बिना गंवा देते हैं वे बाद में उसी प्रकार विलाप करते हैं जिस प्रकार कोई चिंतामणि रत्न को समुद्र में फेंककर विलाप करता है और अंत में पछताता है।

10

लागा आतमराम सो नेहरा...

लागा आतमराम सों नेहरा....
ज्ञानसहित मरना भला रे, छूट जाय संसार।
धिक्क! परौ यह जीवना रे, मरना बारंबार ।।
लागा. ।।१।।
साहिब साहिब मुंहतैं कहते, जानें नाहीं कोई।
जो साहिबकी जाति पिछाने, साहिब कहिये सोई ।।
लागा.।।२।।
जो जो देखी नैनों सेती, सो सो विनसै जाई।
देखनहारा मैं अविनाशी, परमानन्द सुभाई ।।
लागा. ।।३।।
जाकी चाह करैं सब प्रानी, सो पायो घटमाहीं।
'द्यानत' चिन्तामनि के आये, चाह रही कछु नाहीं ।।
लागा. ।।४।।

अब मुझे अपनी आत्मा से प्रीति लग गई है ।

भेद विज्ञान प्राप्त करके मरण भी हो जाये तो भी कोई चिंता की बात नहीं है क्योंकि इससे संसार से मुक्ति मिलती है। लेकिन अज्ञान सहित जीवन यह तो धितक्कार करने योग्य है, जिससे बार-बार मरण प्राप्त होता है।

सभी लोग साहिब अर्थात् आतमा आतमा कहते हैं परन्तु उसका स्वरूप कोई नहीं जानता और जो आतमा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करता है वह स्वयं आतमानुभवी बन जाता है।

हे जीव ! तुझे आंखों से जो पंचन्द्रिय के विषय दिख रहे हैं वे सभी विनाश को प्राप्त होने वाले है। और इन्हें जानने देखने वाला कभी नाश को प्राप्त न होने वाला अविनाशी परमानन्द स्वभावी ही मैं हूँ।

कविवर पण्डित द्यानतरायजी कहते हैं कि सभी प्राणी जिसकी चाह करते हैं वह सुख स्वयं के ही भीतर ही मौजूद है । अतः जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न के मिलने पर अन्य किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती, वैसा ही आत्मस्वभाव रूपी चिंतामणि मैंने प्राप्त कर लिया है।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – ५

1

दिन-रात स्वामी तेरे गीत गाऊँ...

दिन - रात स्वामी तेरे गीत गाऊँ
भावों की कलियाँ चरणे खिलाऊँ ।।टेक।
तेरी शान्त-मूरत मुझे भा गई है।
मेरे नयनों में नजर आ गई है।
मैं अपने में अपने को कैसे समाऊँ,
भावों की कलियाँ चरणे खिलाऊँ ।।१।।
मैं सारे जहाँ में कहीं सुख न पाया।
है गम का भरा गहरा दरिया है छाया।
ये जीवन की नैया मैं कैसे तिराऊँ,
भावों की कलियाँ चरणे खिलाऊँ ।।२।।
यही आस जिनवर-शरण पाऊँ तेरी,
मिट जाये मेरी ये भव-भव की फेरी।
शरण दो, तुम्हें नाथ शीश नवाऊँ,
भावों की कलियाँ चरणे खिलाऊँ ।।३।।
तेरी सौम्य मुद्रा हे त्रिभुवन मे अनुपम,
तेरी वीतरागी परिणति हे अद्भुत।
मै तुझको ही पूजु मै तुझको ही ध्याउँ,
भावों की कलियाँ चरणे खिलाऊँ ।।४।।

हे जिनेन्द्र भगवान! अब मैं प्रतिसमय आपके ही गुणगान करता हूँ और अपने भक्ति रुपी भावों के पुष्प आपके चरणों में समर्पित करता हूँ ।।टेक।।

हे प्रभो! मुझे आपकी शान्त मुद्रा अच्छी लगती हैं और मेरी आँखो को आपकी यह वीतरागी मुद्रा सुहाती हैं। हे प्रभो! कृपया बतायें कि मैं अपने आत्मा में किस तरह रमण कर सकता हूँ अर्थात् आत्मानुभूति कैसे करुँ?।।१।।

हे स्वामी! मैनें चारों गति में कहीं भी सुख प्राप्त नहीं किया। चारों ओर संसार में दुखों का सागर ही दिखाई पडता हैं। मैं अपने जीवन की नाव को इस संसार सागर से कैसे पार लगाऊं?।।२।।

हे जिनवर! अब मेरी एक ही भावना है कि मैं आपकी शरण को प्राप्त करुँ, जिससे मेरा संसार में आवागमन रुक जायें। हे नाथ! आप मुझे अपनी शरण में ले लो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ और अपने भक्ति रुपी भावों के पुष्प आपके चरणों में समर्पित करता हूँ ।।३।।

हे भगवान! आपकी सौम्य मुद्रा तीनों ही लोकों में अनुपम है, आपकी वीतरागी परिणति (दशा) अद्भुत है। आपके निस्पृह स्वभाव के भान से मैं अब आप ही की पूजा-वंदना करता हूँ, आप ही के द्रव्य-गुणों का ध्यान करता हूँ। हे वीतरागी देव! आपके चरणों में ही मेरे भाव समर्पित हो जाये।।४।।

2

हो जिनवाणी जू....

हो जिनवाणी जू, तुम मोकों तारोगी।।
आदि अन्त अविरुद्ध वचन तें, संशय भ्रम निरवारोगी।।
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी...
ज्यों प्रतिपालित गाय वत्स कौ, त्यों ही मुझको पालोगी।।
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी...
सन्मुख काल बाघ जब आवै, तब तत्काल उबारोगी।।
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी...
'बुधजन' दास विनवै माता, या विनती उर धारोगी।।
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी...
उलझी रह्यो हूँ मोह जाल में, ताकों तुम सुरझारोगी।।
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी...

हे जिनवाणी माता! आप ही मुझको इस संसार चक्र से पार कराने वाली हो।।टेक।।

आपके वचन प्रारम्भ से लेकर अंत तक परस्पर विरोध से रहित है, एवं आप ही मेरा संशय और भ्रम का निवारण करने वाली हो।।१।।

जिस प्रकार गाय अपने बछड़े का प्रेमपूर्वक पालन करती है उसी प्रकार आप मेरा पालन पोषण करोगी अर्थात् मुझे राग-द्वेष आदि विकारी भावों से बचाकर सुख का मार्ग बताओगी।।२।।

जब काल रूपी बाघ मेरे सामने आयेगा अर्थात् जब मृत्यु का समय आयेगा तो आप ही उसके भय से मुझे निर्भय करोगी।।३।।

कवि बुधजनजी कहते हैं कि हे जिनवाणी माता! मेरी यही विनय है कि मेरा निवेदन स्वीकार करो।।४।।

मैं मोह रूपी जाल में फंस गया हूँ इसलिये अब आप ही मुझे इस जाल से मुक्त करोगी अर्थात् मुझे कर्म रूपी शत्रुओं से मुक्त करोगी।।५।।

हे जिनवाणी माता! तुम ही संसार सागर से मुझे पार करोगी।

3

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...
हरषि हरषि बहु गरजि गरजि के, मिथ्या तपन हरी।।
परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...
सरधा भूमि सुहावनि लागे, संशय बेल हरी।
भविजन मन सरवर भरि उमड़े, समुझि पवन सियरी।।
परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...
स्याद्वाद नय बिजली चमके, परमत शिखर परी।
चातक मोर साधु श्रावक के, हृदय सुभक्ति भरी।।
परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...
जप तप परमानन्द बढ़्यो है सुखमय नींव धरी।
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी।।
परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...

बारिश के मौसम में जंगल में आत्मध्यान में लीन वीतरागी दिगम्बर मुनिराज के स्वरुप से मानो ज्ञान की धारा प्रवाहित हो रही है। ऐसा लग रहा हैं कि मुनिराज अपने स्वरुप में लीन होकर अत्यंत आनंद का अनुभव कर रहे है जिससे मिथ्यात्व रुपी तपन का नाश हो रहा हैं।।१।।

हे जीव! ऐसा प्रतीत हो रहा हैं कि सम्यक दर्शन रुपी भूमि अत्यंत मनोहारी हैं, जिसने सशंय रुपी मिथ्यात्व की बेल का नाश कर दिया है तथा मुनिराज की मगंल वाणी से निकली भेदविज्ञान रुपी वायु से भव्य जीवों के सरोवर रुपी मन में आनंद उमड़ रहा हैं।।२।।

हे भव्य! मुनिराज की वाणी में आये स्याद्वादरुपी बिजली की चमक से मानो मिथ्यामत पर्वत से गिरकर नष्ट हो गया हैं और जिस प्रकार वर्षा ऋतु के आ जाने से मयुर आदि जीव प्रसन्नता से नृत्य करने लगते हैं, उसी प्रकार वीतरागी दिगम्बर सन्तों को देखकर भव्य जीवों के चित्त में अगाध भक्ति भर जाती हैं।।३।।

मुनिराज की आत्म स्थिरता और तप से उनका आत्मिक आनंद बढ़ गया है और यह आनंद ही सुखमय नींव के समान लग रहा है। कवि द्यानतरायजी कहते हैं, कि सावन के माह में आनंदरुपी बारिश हो रही है और यह आनंद ही आत्मस्थिरता का शाश्वत कारण है।।४।।

4 जीव! तैं मूढ़पना कित पायो ...

जीव! तैं मूढ़पना कित पायो ...
सब जग स्वारथको चाहत है,
स्वारथ तोहि न भायो।।जीव.।।
अशुचि अचेत दुष्ट तनमांही,
कहा जान विरमायो।
परम अतिन्द्री निजसुख हरिकै,
विषय रोग लपटायो।। जीव.।।१।।
चेतन नाम भयो जड़ काहे,
अपनो नाम गमायो।
तीन लोक को राज छांडिके,
भीख मांग न लजायो।। जीव.।।२।।
मूढ़पना मिथ्या जब छूटै,
तब तू संत कहायो।
'द्यानत' सुख अनन्त शिव विलसो,
यों सद्गुरु बतलायो।। जीव.।।३।।

हे जीव! तुम अज्ञानी क्यों हो रहे हो?, सारा जगत अपने स्वार्थ से ही तुमसे स्नेह करता हैं। तुम्हें अपना आत्मा का सुख क्यों नही सुहाता?।।टेक।।

हे जीव! इस अपवित्र और अचेतन शत्रु के समान शरीर में क्यो रमण कर रहे हो? तुम अपने परम अतीन्द्रिय आत्मसुख को भूलकर क्यों विषय भोगों में लीन हो रहे हो?।।१।।

हे प्राणी! तुम्हारा नाम चेतन है तो भी तुम क्यों अचेतन की तरह होकर अपने चेतन नाम के मान को खो रहे हो, तुम तीन लोक के सम्राट सिद्ध स्वरूपी राज्य पद को छोडकर विषयों से सुख की भीख क्यों मांग रहे हो?।।२।।

द्यानतरायजी कहते हैं कि जब तुम मिथ्यात्व के दोष को छोड दोगे तभी जगत में पूज्यनीय होगें और मोक्ष का अनन्त सुख प्राप्त कर पाओगें। इस प्रकार का मार्ग सद्गुरु अर्थात् दिगम्बर मुनिराज ने बताया हैं।।३।।

5

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो...

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो,
ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो।
ज्यौं निशितममैं निरख जेवरी,
भुजंग मान नर भय उर आन्यो।।

ज्यौं कुध्यान वश महिष मान निज,
फँसि नर उरमाहीं अकुलान्यौ।
त्यौं चिर मोह अविद्या पेरयो,
तेरौं तै ही रूप भुलान्यो।।१।।

तोय तेल ज्यौं मेल न तनको,
उपज खपज मैं सुखदुख मान्यो।
पुनि परभावनको करता ह्वै,
तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो।।२।।

नरभव सुथल सुकुल जिनवानी,
काललब्धि बल योग मिलान्यो।
'दौल' सहज भज उदासीनता,
तोष-रोष दुखकोष जु भान्यो।।३।।

हे चेतन! तुम व्यर्थ ही भ्रम में पढे हुये हो। जिस प्रकार मृगतृष्णा को जल समझकर मृग दुखी होता हैं एवं रात्रि के अंधकार में रस्सी को सर्प समझकर कोई मनुष्य दुखी होता हैं।।टेक।।

विपरीत ध्यान के द्वारा स्वयं को भैंसा मानकर व अपने को कहीं फंसा हुआ समझकर कोई मानव बहुत आकुलित होता हैं उसीप्रकार तुम स्वयं अपना स्वरूप भूलकर दु:खी होते हो।।१।।

हे चेतन! शरीर का संयोग तो जल में तेल की भांति हैं अर्थात् शरीर तुमसे अत्यंत पृथक्रूप होने पर भी तुम उसके जन्म–मरण से स्वयं को बहुत दु:खी मान रहे हो तथा परभावों का कर्ता बनकर अपने नवीन कर्म को बांध रहे हो।।२।।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि हे चेतन! अब तुम्हें काललब्धि के बल से मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनवाणी का उत्तम योग प्राप्त हुआ हैं अत: अब तुम सहज उदासीनता का सेवन करो और जो दु:ख के भण्डार हैं ऐसे राग–द्वेष को नष्ट करो।।३।।

6

या नित चितवो उठ के भोर...

या नित चितवो उठ के भोर।।
मैं हूँ कौन, कहाँ ते आयो, कौन हमारी ठौर।।
या नित चितवो उठ के भोर।।

दीसत कौन कौन यह चितवत, कौन करत है शोर।
ईश्वर कौन, कौन है सेवक, कौन करै झकझोर।।
या नित चितवो उठ के भोर।।

उपजत कौन, मरै को भाई, कौन डरे (करे) लखि घोर।
गया नहीं आवत कछु नाहीं परिपूरन सब ओर षष
या नित चितवो उठ के भोर।।

और, और मैं, और रूप ह्वै परिणति करि लई और।
स्वाँग धरै डोलौ याही तें तेरी 'बुधजन' भोर।।
या नित चितवो उठ के भोर।।
मैं हूँ कौन, कहाँ ते आयो, कौन हमारी ठौर।।
या नित चितवो उठ के भोर।।

हे जीव! प्रतिदिन प्रात:काल उठकर इस प्रकार का चिंतन करो कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मेरा जीवन का लक्ष्य क्या हैं?।।टेक।।

हे जीव! यह विचार करो कि मेरा आतमा किसको विषय बनाता हैं, यह चेतन कौन हैं, यह शब्द कहां से आ रहे हैं, यह ईश्वर कौन हैं और भक्त कौन हैं एवं कौन मुझे आश्चर्यचकित करता हैं? ।।१।।

हे जीव! प्रतिदिन विचार करो कि कौन जन्म लेता हैं कौन मरण को प्राप्त करता हैं, और कौन दृश्य देखकर डरता हैं? मेरे स्वरुप मे न तो कुछ घटता और न ही कुछ बढता हैं मैं तो स्वयं हर दृष्टि से परिपूर्ण हूँ।।२।।

बुधजन कवि कहते हैं कि हे जीव! प्रतिदिन विचारो कि यह शरीर, रुप और इसका परिणमन मेरा स्वरुप नहीं हैं और शरीर तो वेश मात्र हैं, इस तरह का ज्ञान प्रगट होना ही जीवन का सुप्रभात हैं।।३।।

7 री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो...

री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो......
शुद्ध भाव बादल मिल आये, सूरज मोह छिपायो।।री.।।

अनहद घोर घोर गरजत हैं, भ्रम आताप मिटायो।
समता चपला चमकनि लागी,
अनुभौ–सुख झर लायो।।री.।।१।।

सत्ता भूमि बीज समकितको, शिवपद खेत उपायो।
उद्धत भाव सरोवर दीसै, मोर सु न हरषायो।।री.।।२।।

भव–प्रदेशतैं बहु दिन पीछैं, चेतन पिय घर आयो।
'द्यानत' सुति कहै सखियनसों,
यह पावस मोहि भायो।।री.।।३।।

हे सखी! मेरे हृदय में ज्ञान रूपी घन छा गया है। ऐसा लग रहा है कि मानो शुद्धभाव के बादल छा गये हैं और इस कारण से मोहरूपी सूर्य दिखाई नहीं दे रहा है।।टेक।।

शुद्धभाव रूपी बादलों की घनघोर गर्जना से मिथ्या भ्रम की तपन समाप्त हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि समता रूपी बिजली चमक रही है और आत्म अनुभव के सुख की बारिश हो रही है।।१।।

श्रद्धा की भूमि पर सम्यक्त्व रूपी की बीज के द्वारा मोक्ष महल प्राप्त होने वाला है। आतमा के पवित्र परिणामों का सरोवर देखकर मानो मन रुपी मोर हर्षित हो रहा है।।२।।

कविवर द्यानतरायजी कहते हैं कि आत्मपरिणाम अपने सहेली से कहती है कि हे सखी! प्रिये जीव संसार के भाव को छोडकर अब अपने घर आ गया है।यह बारिश का माह मुझे बहुत सुहा रहा है।।३।।

8 मोहि कब ऐसा दिन आय है...

मोहि कब ऐसा दिन आय है।।
सकल विभाव अभाव होहिंगे, विकलपता मिट जाय।।
मोहि कब ऐसा दिन आय है।।
यह परमातम, यह मम आतम, भेद बुद्धि न रहाय।
औरनि की का बात चलावै, भेद विज्ञान पलाय।।
मोहि कब ऐसा दिन आय है।।
जानैं, आप आप मैं आपो, सो व्यवहार बिलाय।
नय प्रमाण निक्षेपन मांहीं, एक न अवसर पाय।।
मोहि कब ऐसा दिन आय है।।
दर्शन ज्ञान चरण के विकलप, कहो कहां ठहराय।
द्यानत चेतन चेतन ह्वै है, पुद्गल पुद्गल थाय।।
मोहि कब ऐसा दिन आय है।।

हे प्रभु! मेरा ऐसा दिन कब आयेगा, जब सम्पूर्ण विभावों का अभाव होगा और सारे विकल्प मिट जायेंगे।।टेक।।

अज्ञानी जीव को ये परमात्मा और ये मेरा आत्मा – ऐसी भेदबुद्धि नहीं रहती। औरों की तो क्या बात करें – यहाँ तो भेदविज्ञान का विकल्प भी नहीं रहता है।।१।।

हे प्रभु! अपने आप को आत्मस्वरूप जानने पर व्यवहार सापेक्ष बुद्धि नष्ट हो जाती है। तब नय–प्रमाण–निक्षेपों के बीच रहकर एक भी अवसर नहीं पाता अर्थात् इन सभी को जानने का विकल्प उत्पन्न नही होता हैं।।२।।

कविवर द्यानतराय जी कहते हैं कि जब चेतन चेतन में और पुद्गल पुद्गलमय हो जाता है तब दर्शन, ज्ञान, चरित्र के विकल्प भी कहाँ ठहरेंगे? अर्थात् उन्हें जानने की बुद्धि भी नही रहती हैं।।३।।

9 ज्ञानी जीवनि के भय...

ज्ञानी जीवनि के भय, होय न, या परकार।।
इह भव, परभव, अन्य, न मेरो, ज्ञानलोक मम सार।
मैं वेदक इक ज्ञान भाव को, नहिं पर वेदन हार।।
ज्ञानी जीवनि के भय........

निज स्वभाव को नाश न तातें, चहिये नहि रखवार।
परम गुप्त, निज रूप सहज ही, पर का तहँ न संचार।।
ज्ञानी जीवनि के भय ....

चित् स्वभाव निज प्राण तास को, कोई नहीं हरतार।
मैं चित् पिण्ड, अखण्ड, न तातैं, अकस्मात भय भार।।
ज्ञानी जीवनि के भय ....

होय निशंक स्वरूप अनुभवैं, जिनके यह निर्धार ।
मैं सो मैं, पर सों मैं नाहीं, 'भागचन्द' भ्रम डार ।।
ज्ञानी जीवनि के भय, होय न, या परकार।

ज्ञानी जीव को किसी भी प्रकार का भय नहीं होता।। टेक।।

ज्ञानी जीव विचार करता है कि यह लोक या पर लोक आदि कोई भी लोक मेरा नहीं है, मेरे लिये तो एक मात्र ज्ञान लोक ही सारभूत है।मैं तो एक मात्र ज्ञान लोक ही सारभूत है।मैं तो एक मात्र ज्ञान भाव का वेदक हूं, मैं पर का वेदन नहीं करता।।१।।

मेरे आत्मस्वरुप का कभी नाश नहीं हो सकता इसलिये मुझे किसी की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। मैं अपनी मर्यादा में रहने वाला, सहज स्वरुपमयी हूं और मेरे स्वरुप में पर का प्रवेश नहीं है।।२।।

मैं चेतन स्वभाव वाला हूं और मेरे प्राणों का हरण कोई नहीं कर सकता। मैं चेतना का पिण्ड, अखण्ड हूं इसलिये मैं अकस्मात् भय से रहित हूं।।३।।

कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि जिनको आत्म स्वरुप का निश्चय हो जाता है वे जीव अपने स्वरुप को निशंक अनुभव करते हैं। वे भ्रम का नाशकर विचार करते हैं कि मैं पर से भिन्न आत्म स्वरुपमयी हूं।।४।।

10 कर! कर! आतम हित रे प्राणी...

कर! कर! आतम हित रे प्राणी।।
जिन परिणामनि बंध होत है, सो परिणति तज दुखदानी।।
कर! कर! आतम हित रे प्राणी।।

कौन पुरुष तुम कहाँ रहत हो, किहि की संगति रति मानी।
जे पर्याय प्रगट पुद्गल मय, ते तैं क्यों अपनी जानी।।
कर! कर! आतम हित रे प्राणी।।

चेतन ज्योति झलकत तुझ मांहीं, अनुपम, सो तैं बिसरानी।
जाकी पटतर लगत आन नहिं, दीप, रतन, शशि, सूरानी।।
कर! कर! आतम हित रे प्राणी।।

आप में आप लखो अपनो पद, 'द्यानत' करि तन मन वाणी।
परमेश्वर पद आप पाइये, यों भाषैं केवलज्ञानी।।
कर! कर! आतम हित रे प्राणी।।

हे प्राणी! अपना आत्म हित करो और जिन परिणामों से बंध होता है उन दुःखदायी परिणामों का त्याग करो।।टेक।।

हे चेतन! तुम कहाँ निवास करते हो और किनकी संगति में आनंद मान रहे हो। जो प्रत्यक्ष रूप पुदगल की पर्याय है उसको तुम क्यों आपना मानते हो।इसलिये हे प्राणी अपना आत्म हित करो।।१।।

तुम्हारी चैतन्य ज्योति तुम्हारे में ही दिखाई दे रही है उसे तुम भूल गये हो। जिस चैतन्य ज्योति के सामने दीपक, रत्न, सूर्य और चंद्रमा की ज्योति भी फीकी है।हे प्राणी! अपनी आत्मा का हित करो।।२।।

कविवर श्री द्यानतरायजी कहते हैं कि यदि तुम अपने सम्पूर्ण मन–वचन–काय के उपयोग से अपनी आत्मा में आपरूप का श्रद्धान करोगे तो परमात्मा बन जाओगे – ऐसा केवलज्ञानी परमात्मा की वाणी में आया है।।३।।

ADHYATAM SANJEEVANI
· Songs Available On AUDIO APP ·

Music

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust

302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West)

Mumbai - 400 056 INDIA

Tel. : +91 22 2613 0820 / 2610 4912

info@vitragvani.com www.vitragvani.com / vitragvanee /c/vitragvanii